BED I- CPS 1

पाठ्यचर्या में व्याप्त भाषा

Language across the Curriculum

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-66-4
BED I- CPS 1 (BAR CODE)

BED I- CPS 1

पाठ्यचर्या में व्याप्त भाषा

Language across the Curriculum

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद □**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली □**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा □**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० पतंजलि मिश्र** सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
सुश्री ममता कुमारी सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-66-4

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: पाठ्यचर्या में प्रयुक्त भाषा, पाठ्यक्रम कोड- BED I- CPS 1)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित।
प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17 **पाठ्यक्रम का नाम: पाठ्यचर्या में व्याप्त भाषा, पाठ्यक्रम कोड- BED I- CPS 1**		
इकाई लेखक	**खण्ड संख्या**	**इकाई संख्या**
डॉ ० कृष्णकान्त त्रिपाठी सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विद्यापीठ, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम	**1**	1, **2, 3** व **6**
डॉ० पतंजलि मिश्र सहायक प्रोफेसर**,** शिक्षा विद्यापीठ, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान	**1**	**4** व **5**
	2	**1, 2, 3** व **4**

BED I- CPS 1
पाठ्यचर्या में व्याप्त भाषा
Language across the Curriculum

खण्ड 1: विद्यार्थियों की भाषायी पृष्ठभूमि		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	भाषा का विकास: बोली और लिपि	2-22
2	भाषा और शिक्षा	23-36
3	बहुभाषिकता	37-54
4	विद्यालय की भाषा बनाम घर की भाषा या बोली	55-65
5	मानक भाषा के रूप में विद्यालयी भाषा की शक्ति की गतिकी बनाम घर की भाषा या बोली की शक्ति की गतिकी, न्यूनता या कमी का सिद्धांत, निरंतरता या गैर निरंतरता का सिद्धांत	66-77
6	अनुदेशन की भाषा	78-94

खण्ड 2: कक्षा-कक्ष परिचर्चा तथा पठन-बोध की प्रकृति		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	कक्षा में संवाद :अर्थ, प्रकार्य, विशेषता एवं अभ्यास, सम्बन्धित विषय क्षेत्र में अधिगम वृद्धि के लिए मौखिक भाषा प्रयोग करने की रणनीति	96-108
2	सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा, कक्षा- कक्ष में प्रश्नों का स्वरुप, प्रश्नों के प्रकार एवं शिक्षक की भूमिका	109-117
3	विषय क्षेत्र में पठन कार्य: सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में, अर्थ प्रकाशक एवं विवरणात्मक विषय वस्तु, संक्षिप्तीकरण विषय वस्तु, हस्तांतरण विषय वस्तु व चिंतनपरक विषयवस्तु की प्रकृति, स्कीमा सिद्धांत	118-134
4	विशेष सन्दर्भों में लेखन : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में लिखने की प्रक्रिया,पढ़ने एवं लिखने के बीच सम्बन्ध स्थापित करना ,बच्चों के संप्रत्यय को समझने के लिए उनके लेखन का विश्लेषण करना: सीखने एवं समझने के लिए तरीके एवं माध्यम के रूप में उद्देश्यपरक लेखन	135-145

खण्ड 1

Block 1

ईकाई 1 - भाषा का विकास: बोली और लिपि

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विभिन्न मानव समूहों द्वारा सम्प्रेषण हेतु बोली का प्रयोग: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
1.4 भाषा उत्पत्ति से सम्बंधित श्रोत व आधार
1.5 लिपि का विकास और विभिन्न भाषाओं की लिपि
1.5.1 लिपि
1.5.2 लिपि और बोली में अंतर
1.5.3 लिपि और बोली में सम्बंध
1.6 लिपि के विकास का इतिहास
1.7 विभिन्न भाषाओं की लिपियाँ
1.7.1 भारतीय लिपियाँ
1.7.2 विदेशी लिपियाँ
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भाषा का प्रयोग जितना ही नैसर्गिक, सरल और उपयोगी है, इसको परिभाषित करना उतना ही कठिन है। भाषा मानव की नैसर्गिक जैवीय क्षमता के साथ ही एक सांस्कृतिक विशेषता भी है। जो विभिन्न भाषाओं के मध्य अंतर का आधार है। भाषा किसी समाज कें अन्दर अनेकानेक जटिल व्यवस्थाओं के मध्य एक जटिल व्यवस्था (System) है। जिसमें कई उप-व्यवस्थाएं होती है। मानव भाषा का विकास कब और कैसे हुआ इसपर कोई एक मत निराकरण नही हो सका है। विषय की जटिलता और अनुभवजन्य साक्ष्यों के अभाव के कारण 'भाषायी समाज पेरिस' (Linguistic Society of Paris, 1871) ने इस विषय पर तत्कालीन और भविष्य में किसी भी परिचर्चा पर रोक लगा दी थी(Larson, Dprez & Yamakido, 2010)। यह प्रतिबन्ध पश्चिमी देशों में बीसवीं शदी के अंत तक प्रभावकारी बना रहा है तथापि चोमस्की,

हउसर, फिच (Chomsky, Hauser, Fitch) आदि विद्वानों के इस दिशा में सतत कार्यशील रहने से इस विषय पर लगा प्रतिबंध प्रतीकात्मक रूप से खत्म हो जाता है और अर्थहीन हो जाता है। भाषा की उत्पत्ति के विषय में उपलब्ध अनेकानेक सिद्धांत व श्रोत प्रचलित रहें है, उनमें से कुछ पर चर्चा हम आगे के पृष्ठो में करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप में निम्नलिखित क्षमताएँ अपेक्षित है;

1. भाषा के दो तत्वों बोली और लिपि के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
2. बोली और लिपि के अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
3. भाषा (बोली) के विकास की ऐतिहासिक विवेचना कर सकेंगे।
4. भाषा की उत्पत्ति से सम्बंधित विभिन्न श्रोतों, आधारों व सिद्धंतों का मूल्यांकन कर सकेंगे।
5. लिपि के इतिहास को जानते समझते हुए बताने में सक्षम होंगे।
6. लिपि के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
7. विभिन्न लिपियों के लिखने के तरीकों में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
8. विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं की लिपियों को बता सकेंगे।

1.3 विभिन्न मानव समूहों द्वारा सम्प्रेषण हेतु बोली का प्रयोग: ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य (Use Of Spoken Languages For Communication By The Various Segments Of Human Groups: A Historical Perspective)

इकाई के इस खंड में हम मानव द्वारा भाषा के प्रयोग के इतिहास पर चर्चा करेंगे। जब कभी भी भाषा के इतिहास की बात आती है तब हमारा ध्यान सर्वप्रथम बोलचाल की भाषा पर ही जाता है। इसमें कोई संदेह नही है कि सर्वप्रथम बोली(Spoken Language) का विकास हुआ था। इस तथ्य को हम मनुष्य में भाषा के विकास के अवलोकन से भी सिद्ध कर सकते है। आपने देखा होगा कि बच्चे बोलना पहले सीखते है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवाज करते है जिन ध्वनियों पर उनकों सकारात्मक प्रतिक्रिया मिलती है उन ध्वनियों को वे दोहराते रहते है (इस तथ्य के आधार पर भी भाषा की उत्पत्ति का एक सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है)। ये देखा गया है कि मानकीकृत भाषा के विकास के उपरांत भी कुछ बच्चे स्वयं के बनाए हुए शब्दो का प्रयोग संदर्भ विशेष में जारी रखते है। यह सिर्फ एक शब्द का किसी एक बच्चे के लिए अर्थपूर्ण बनने का संदर्भ है । समस्त मानव प्रजाति के विभिन्न वर्गो/समूहों/प्रखंडों की सामान्य भाषा और विभिन्न भाषाओं के विकास का इतिहास हजारों वर्ष पहले प्रारम्भ हुआ था, जो आज भी जारी है ।

भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में सामान्य प्रश्न जो आपके मस्तिष्क में आते है और इस विषय पर पूर्व की चर्चा के आधार पर आप यह तो मान सकते है कि भाषा एक जटिल और विलक्षण संकल्पना है। इसको परिभाषित करना और इसकी उत्पत्ति के विषय में सही सही कुछ कहना असम्भव नही पर दुरूह कार्य अवश्य है। भाषा की उत्पत्ति के सही समय के विषय में सटीक अनुमान लगाना संभव नहीं है। हम यह नहीं जानते हैं कि भाषा का विकास कैसे हुआ, क्योकि जीवन की उत्पत्ति के प्रारम्भिक पदचिन्हों की भाँति भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में ऐतिहासिक प्रमाण व साक्ष्य प्राप्त नही हुए है। विद्वानों का अनुमान है कि यही कुछ लगभग एक लाख से पचास हजार वर्षो के बीच बोलचाल की भाषा का विकास हुआ होगा और लिखित भाषा का विकास लगभग पाँच हजार वर्षों पूर्व हुआ होगा। जैसा कि भाषा सभी विषयों की आधार है और एक अंतर्विषयक अनुशासन भी हैएक अध् ययन सामग्री की रूप में भाषा अनेकानेक विषय क्षेत्रों के अनतर्गत आती है जिन्हें हम भाषा कें आधार कह सकते है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों से हम भाषा की उतपत्ति का इतिहास पता करने का प्रयत्न करते है।

1.4 भाषा उत्पत्ति से सम्बंधित श्रोत व आधार

भाषा की उत्पत्ति से सम्बंधित सैकड़ो सिद्धांत प्रतिपादित किए गये है जिन्हें हम श्रोत व आधार भी कहते है। सभी सिद्धांतों की चर्चा करना यहाँ सम्भव और आवश्यक नही है। अतः हम कुछ प्रमुख सिद्धांतों व विचारधाराओं की चर्चा करेंगे।

1. **धार्मिक श्रोत**: हम जानते है कि विश्व के सभी धर्मों में जो प्रमुख तत्व है वह मानव और ईश्वर का अस्तित्व, विशेषताएं और दोनो तत्वों का आपस में सम्बंध की विवेचना करते है। भाषा भी एक मनुष्य से जुड़ी विशेषता है। अतः विश्व के प्रमुख धर्मों में भाषा की उत्पत्ति के संदर्भ में भी विवेचना मिलती है। हिंदू धर्म के अनुसार भाषा का जन्म देवी सरस्वती से हुआ। यहूदी और ईसाई धर्म के अनुयायियों का मानना है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम आदम को उत्पन्न किया। आदम ने संसार के अन्य प्राणियों के विषय में जो भी कुछ कहा वे शब्द ही उनके नाम हो गए। संसार के आदि पुरुष और स्त्री(आदम और हौवा) जिस भाषा में बात किया करते थे उसी से संसार की समस्त भाषाओं का जन्म हुआ। इस बात को सिद्ध करने, जाँचने और खंडन करने हेतु 25000 वर्षों से 500 वर्षों के पूर्व तक शोध व परीक्षण किए जाते रहे(युले, 2006)। आज के समय में भाषा की उत्पत्ति के इस आधार पर चर्चा करना अनावश्यक माना जाता है(शर्मा, 2010)।
2. **प्राकृतिक ध्वनि श्रोत**: इस विचारधारा के अनुसार प्रारम्भिक शब्दों की उत्पत्ति मनुष्य द्वारा प्राकृतिक ध्वनियों के सुनने और उनकि आवृत्ति करने से हुई। इस विचारधारा के अनुसार काँव काँव की ध्वनि से कौआ शब्द बना। इसी सिद्धांत की एक कड़ी के रूप में यह विचार आता है कि मानव के हर्ष और विषाद के अनुभवों के बाद की स्वभाविक ध्वनियों जैसे कि 'आह' 'ओह' 'वाह' 'हाय' आदि से भाषा का विकास हुआ होगा। यह बात सत्य है कि भाषा में कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो जीवों के नाम और उनके व्यवहार से सम्बंध रखते है परंतु सम्पूर्ण मानव भाषा की उत्पत्ति की व्याख्या इस

आधार पर नही की जा सकती। शब्द विज्ञान(Morphology), जो कि आज एक पूर्ण विकसित विषय माना जाता है, वह किसी भी भाषा के शब्दों की उत्पत्ति के सिर्फ यही श्रोत तो नही बताता है। तथापि इस श्रोत का हम पूर्णरूप से खंडन नही कर सकते है। हो सकता है कि मानव घोषयंत्र का प्रयोग इन्ही शब्दों के प्रयोग से प्रारम्भ हुआ हो।

3. **मातृभाषा सिद्धांत**: प्राकृतिक श्रोत के ही समान मातृभाषा सिद्धंत के मानने वाले सोचते है। इस मत के अनुसार भाषा की उत्पत्ति सर्वप्रथम माता और उसके शिशु के बीच सम्वाद से हुई जो बाद में आंगे चलकर अन्य निकट संबंधियों में सम्वाद का माध्यम बनते हुए समुदाय विशेष की भाषा का रूप ले लेती है।
4. **जैविक संरचना/ शारीरिक अनुकूलन श्रोत**: कुछ विद्वानों का मानना है कि मनुष्य में भाषा का विकास इसलिए हुआ कि उसकी जैविक सरंचना अन्य जीवों की तुलना में अधिक अनुकूल थी। इस विचार क्रम में सर्वप्रथम हम मनुष्य के पूर्णतः द्विपदीयचर(दो पैरों पर चलने वाला) होने पर ध्यान देते है। इस कारण से मनुष्य के मस्तिष्क तथा घोषयंत्र का समुचित विकास हो सका। अब आप मनुष्य के दांतो पर ध्यान देंगे जो सीधी खड़ी स्थिति में होते है। मांसाहारी जीवों की भाँति मानव-दंत भोजन को चीरने में बहुत उपयोगी तो नही कहे जा सकते है, पर दंताक्षरों (वर्णों: त, थ, द, ध) के उच्चाराण में अनूठी भूमिका अदा करते है। मानव ओष्ठ की सरंचना शब्द उच्चारण की दृष्टि से अधिक अनुकूल होती है जिससे ओष्ठय वर्णों (प, फ, ब, भ) का उच्चारण सम्भव हो पाता है। इसी प्रकार से जैवभाषाविज्ञानियों ने हमारे मुख, तालु, जिव्हा, आदि की विशिष्ट सरंचना को भाषा के आधार का कारण माना है। मनुष्य में घोषयंत्र का स्थान भी अन्य स्तनपायी (बंदर, बनमानुष आदि) जीवों की तुलना में कुछ नीचे होता जो गलकोश को बड़ा करते हुए ध्वनि-गुंजन की संभावना उत्पन्न करता है। घोषयंत्र की यह स्थिति मानव के द्विपदचारी होने के कारण मानी जाती है ।

   नीगस के अनुसार मनुष्य का शाकाहारी होना भी भाषा के विकास का कारण बना। मांसाहारी जीवों में कपोलों और मुख का ठीक से विकास नही हो पाता है क्योंकि वे भोजन को ठीक से चबाते नही हैं । इसके विपरीत मनुष्य मुख व कपोलों का अधिक विकास कर सका इसलिए ध्वनि-भेद में वह अन्य पशुओं से अधिक समर्थ हो सका (Negus, 1946) । मुखविवर के संकुचन और प्रसर से मनुष्य बोलने और गाने में सहायता लेता है। गाने की क्षमता को भी भाषा के विकास का एक उच्च कोटि का पायदान माना जा सकता है, जिसमें गायक को भाषा में प्रयोग होने वाले विभिन्न अंगों का कुशलता से प्रयोग करना होता है।
5. **अनुवांशिक श्रोत**: इस विचारधारा के लोग भाषा को एक अनुवांशिक लक्षण मानते है। आप ने देखा होगा कि कुछ बच्चे जो जन्म से बहरे होते है, परिणामतः वे हिंदी, अंग्रेजी, गढ़वाली आदि सामन्यरूप सें प्रचलित मानक भाषाएँ नही सीख पाते है। तथापि समयांतराल व अवसर प्राप्त होने पर वे भी संकेत भाषा में सम्प्रेषण करने में सक्षम हो जाते है। उनमें से कुछ बच्चे तो समाज में प्रचलित मानक भाषा भी सीखने लगते जिसे देखकर आम जन ईश्वर का चमत्कार कहते है। इससे एक बात तो सिद्ध होती है कि मानव शिशु भाषा सम्बंधित एक विशेष क्षमता के साथ ही जन्म लेते है।

भाषा की उत्पत्ति के अनेकानेक श्रोत, सिद्धांत, व तर्क प्रस्तुत किए जा चुके है तथापि इसकी उत्पत्ति का प्रारंभ और कारण एक रहस्य ही बना है। अनुवांशिकी एक ऐसा विषय है जो तंत्रिका विज्ञान, आणुविक जीव विज्ञान, विकासवादी जीवविज्ञान की मदद से शायद इस पहेली का हल निकालने में सक्षम हो। भाषा की उत्पत्ति से सम्बंधित यह खोज अब उस विशेष 'भाषा जीन' (Language-gene) की खोज की ओर अभिमुख होता दिखाई देता है, जो मनुष्य को अन्य प्राणियों से अलग करता है। प्रसिद्ध भाषाविद यूले महोदय भी भाषा की इस पहेली का हल मानव अनुवांशिकी में ही मानते है। उनका मानना है कि हम भाषा के कुछ गुणों व विशेषताओं का वर्णन तो कर सकते है परंतु एक वस्तुनिष्ठ सर्वमान्य परिभाषा प्रस्तुत करना आज भी संभव नही है(Yule, 2006, p.16). लेकिन एक तथ्य तो सर्वमान्यरूप से सिद्ध हो चुका है कि मानव में कुछ जैविक क्षमताएँ तो होती है जो किसी भाषा के प्रत्यक्ष अनुदेशन के बिना भी मानव को उस भाषा विशेष को प्रयोग करने की दक्षता प्रदान करती है (Larson, Dprez & Yamakido, 2010)। रामविलास शर्मा जी के शब्दों में इस परिचर्चा को एक अंत दिया जा सकता है। शर्माजी कहते है कि भाषा रचना का कारण मानव का परिवेश, उसके जिवन की अवश्यकताएँ तथा उसका विशेष शारीरिक गठन है (Sharma, 2010)।

अभ्यास प्रश्न

1. लिखित भाषा की उत्पत्ति कितने वर्षों पूर्व से मानी जाती है?
2. बोलचाल की भाषा की उत्पत्ति को कितने वर्षों पूर्व से माना जाता है?
3. भाषा रचना के कौन-कौन से कारण माने जाते है?

1.5 लिपि का विकास और विभिन्न भाषाओं की लिपि (Development of the Alphabets and Scripts of Various Languages)

1.5.1 लिपि

क्या आप जानते है कि लिखित भाषा या लिपि का प्रयोग सर्वप्रथम कहाँ हुआ था? लिपि और बोली में क्या अंतर है? और विभिन्न भाषाओं की लिपियों का विकास कैसे हुआ? क्या किसी भाषा की लिपि में कभी आंशिक या पूर्ण परिवर्तन हुआ है? इन्ही रोचक प्रश्नों के उत्तर जनने के लिए हम आगे बढ़ते है।
लिपि या लिखित-भाषा को परिभाषित करना और इसके विकास की ऐतिहासिक विवेचना करना, भाषा (बोली) की तुलना में बहुत कठिन कार्य नही है। क्योंकि यह एक मूर्त तत्व है। डेनियल (Daniels, 2003) लिपि को इस प्रकार से परिभाषित करते हैं;

> *" लिपि न्यूनाधिक स्थाई चिन्हों की प्रणाली या पद्धति होती है जो किसी बोली या कथन विशेष को इस प्रकार से प्रस्तुत करने के लिए*

प्रयुक्त होती है कि वक्ता की हस्तक्षेप के बिना लगभग वैसा ही पुनः प्राप्त किया जा सके"।

अर्थात जो विचार य संदेश वक्ता ने संप्रेषित किए हैं, श्रोता भी लगभग वैसा ही प्राप्त करें या वही अर्थ निकालें। इस परिभाषा में लिपि को एक चिन्हों की प्रणाली बताया गया है। लिपि का उद्देश्य दूरवर्ती सम्वाद को वस्तुनिष्ठ तरीके से स्थापित करना है। शिक्षा तकनीकी, जनसंचार तकनीकी, सूचना-सम्प्रेषण तकनीकी के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि में गिना जाता है।

विश्व में कितनी भाषाएं बोली जाती है? इसका एक अंदाजा ही लगाया जा सकता है। प्रत्येक बार की नृजातीय गणना में इनकी संख्या बदलती रहती है। आप विभिन्न पुस्तकों में अलग अलग संस्थाओं द्वारा दिए तथ्यों में अंतर पायेंगे। इससे हमें भ्रमित होने की आवश्यकता नही है क्योंकि हम जानते है की भाषा एक गतिशील व परिवर्तनशील तत्व है। अभी तक यही कोई 5000 से 7000 के बीच भाषाएं बताई जाती है। विश्व के लगभग 200 देशों में (196) 6000 से अधिक (6909) भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। जबकि इन सभी भाषाओं के प्रयोग करने वाले कुल लगभग दो दर्जन लिपियों क प्रयोग करते है। भाषाओं की तरह लिपियों की संख्या भी अविवादित रूप से निश्चित नही की जा सकती है। यहाँ लिपियों की संख्या की चर्चा करने का उद्देश्य यह है कि आप भाषाओं और लिपियों की संख्या में अंतर देख कर स्वयं समझ जायेंगे कि भाषा और लिपि दो अलग अलग तत्व है। लिपि का विकास भाषा के उदविकास के बहुत बाद में हुआ है तथापि लिपि का इतिहास भी हजारों वर्ष पुराना हो चुका है। बोले जाने वाले अमूर्त शब्दों व भावों को मूर्त स्थायी रूप देने के बहुत से और बहुत तरीकों से प्रयास किए गये (जिनकी चर्चा हम इस खण्ड में आगे करेंगे)। इन अनेकनेक प्रयासों के लम्बे इतिहास में बहुत सी लिपियों ने जन्म लिया। इनमें से कुछ आज भी प्रयोग में है और कुछ विलुप्त हो गई। इसके अलावा कुछ लिपियों में समय और सुविधा के हिसाब से मूलभूत परिवर्तन हुए। कुछ लिपियों ने नई लिपियों को जन्म दिया य अन्य लिपियों का पोषण किया और उनका प्रयोग खत्म हो गया। कुछ श्रोतों के अनुसार शुद्ध लिपियाँ और वर्णमालाएँ 20 ही है (worldstandards.eu, & sixtyvocab.com). सभी प्रकार की लिपियों और वर्णमालाओं को जोड़ने पर भी इनकी संख्या 40 से अधिक नही हो पाती है। अद्यतन जानकारी के अनुसार विश्व की 7099 जीवित भाषाओं(Ethnologue, 2017) में से सिर्फ 300 भाषाएं लिखित रूप में प्रयोग की जाती है (DayTrnaslation, n. d.)। अर्थात भाषा लिखित रूप में ही हो, यह किसी भी भाषा के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त नहीं है। सभी भाषाएं एक लिपि में और एक भाषा सभी लिपियों में लिखी जा सकती है। आइये हम भाषा और लिपि के अंतर को बिंदुवार तरीके से समझने की कोशिश करते है;

1.5.2 लिपि और बोली में अंतर

- लिपि या लेखन भाषा की तरह कोई जैविक यह अनुवांशिक कारण नहीं होता है। कोई भी मानव शिशु अपने वातावरण में बोली जाने वाली भाषा को सीखें बिना नहीं रह सकता है। परंतु लिपि इसके विपरीत कोई नैसर्गिक क्रिया नहीं है बिना अनुदेशन (शिक्षण) के कोई बच्चा लिखने और पढ़ने की क्रिया प्रारंभ नहीं कर सकता है।

- बोली की अपेक्षा लेखन एक सचेतन क्रिया है। इसके लिए मानव मस्तिष्क का कोई विशेष हिस्सा निर्धारित नहीं होता है, और न ही इसके लिए कोई विशेष मानव जीन(Gene) आधार है। लिपि प्रकल्पित(Devised) तत्व है, जिसकी रचना सचेतन रूप से की गई है। जबकि भाषा एक उदविकसित (evolved) मानव छमता है। जिसकी उत्पत्ति मानव के लाखों वर्षों के उद्विकास के इतिहास में छिपी हुई है।
- आज सूचना तकनीकि के समय में आपके लिए यह समझना कठिन नहीं है कि किसी भी भाषा की लिपि में परिवर्तन किया जा सकता है। आप मोबाइल संदेश भेजते ही होंगे। मोबाइल संदेश की भाषा हिंदी, गढ़वाली, कुमाऊनी कुछ भी रखते हुए रोमन लिपि(अंग्रेजी भाषा की लिपि) का प्रयोग तो कर ही लेते होंगे। अथवा आपने बहुत से अंग्रेजी के शब्द देवनागरी हिंदी वर्णमाला लिपि में लिखे होंगे। जिसमें आपका अपना नाम सर्वाधिक लिखा जाने वाला शब्द होगा। कहने का तात्पर्य यह है की लिपि और भाषा अलग-अलग तत्व है। एक भाषा को सभी लिपियों में लिखा जा सकता है। देश की भाषा या भाषाएं कोई भी हो पर समझने की सुविधा की दृष्टि से हम लिपि विशेष के प्रयोग को कानून द्वारा अनिवार्य भी कर सकते हैं। जैसा कि हमारे देश के सभी सरकारी कामकाज को देवनागरी और रोमन लिपि में ही प्रकाशित किया जाता है। उत्तराखण्ड की प्रशासनिक भाषाएं हिंदी और संस्कृत दोनो ही देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

  आप बहुत सी हिंदी भाषा की कहानियों को अंग्रेजी(रोमन) लिपि में कई इंटरनेट साइटों पर पढ़ सकते है। दो भाषाओं के संयुक्त प्रयोग के कारण कुछ ब्लोग (Blog/ वेबसाइट पर लेख व निबंध) लेखकों ने तो रोमनागरी (Romanagari) श्बद का प्रयोग करना शुरू कर दिया है। रोमनागारी एक संयुक्त शब्द (portmanteau word) है जो हिंदी(देवनागरी) लेखों को अंग्रेजी(रोमन) लिपि में लिखे जाने पर प्रयोग होता है जिसमें शब्द देवनागरी के और अक्षर(वर्ण) रोमन लिपि के होते है। इस प्रयोग से आप भाषा और लिपि के स्वतंत्र अस्तित्व को समझ सकते है।
- अपनी गतिशील व प्रवाहमय लक्षण के कारण बोली(भाषा) धीरे-धीरे विकसित होती है और विलुप्त भी हो सकती है। उत्तराखंड की 15 बोलियों में से दो (गढ़वाली और कुमायुनी) ही प्रमुखता से बोली जाती हैं और बाकी में से कुछ तो अदृश्य होने की कगार पर हैं। अर्थात जिंन्हें उत्तराखण्ड के लोग भी नही जानते कि यह बोलियाँ उनकी ही संस्कृति का अंग रही है। ऐसी विलुप्तप्राय बोलियाँ ग्रामीण इलाकों में सिर्फ बिना पढ़ें लिखे या बुजुर्ग लोगो द्वारा प्रयोग में लाई जाती है। ऐसे ही बहुत सी भाषाएं मर चुकी हैं या मृतप्राय हैं क्योंकि उनको बोलने वाले लोग या तो नहीं रहे या तो भाषा परिवर्तन कर चुके हैं। परंतु उन भाषाओं का साहित्य चिरजीवी होता है। सिंधु सभ्यता के अवशेषों से जो लिपि मिली है हम उसका अर्थ निकालने में असमर्थ है क्योंकि वह भाषा अब लुप्त हो चुकी है परंतु आप देख रहे हैं की लिपि आज भी आपके सामने अस्तित्व में है। हम कह सकते हैं कोई भी लिपि तुलनात्मक रुप से भाषा की अपेक्षा अधिक लंबी उम्र की होती है। यह भाषा और लिपि के अंतर के साथ साथ सम्बंध का भी कारण कहा जा सकता है। किसी भाषा को चिरजीवी बना देने के लिए

उसका लिखित भाषा के रूप में होना जरूरी होता है। लिपि के लिखने और प्रयोग के तरीकों में भी परिवर्तन होते हैं पर ऐसे परिवर्तन किसी बोली की तुलना में नगण्य कहे जा सकते हैं।

नेशनल जिओग्रफिक मासिक पत्रिका के अनुसार हर दो सप्ताह (14 दिन) में एक भाषा लुप्त हो जाती है और इस गति के हिसाब से अगली शताब्दी तक विश्व में प्रचलित लगभग 7000 भाषाओं में से आधी ही रह जायेंगी(Rymer, 2012)।

- भाषा विज्ञान को जब हम मनोविज्ञान के साथ जोड़कर समझते हैं तब लिपि भाषाविज्ञान के पाले को छोड़कर संकेतशास्त्र य लक्षणविज्ञान (Semiotics) की तरफ खड़ी दिखाई देती है। क्योंकि मनोविज्ञान के अनुसार भाषा एक संज्ञानात्मक अमूर्त क्रिया हो जाती है। जबकि लिपि मूर्त व स्थूल प्रकृति की होती है।
- ज्ञानेंद्रिय प्रयोग के आधार पर भाषा और लिपि में अंतर हो जाता है। छोटी सी बात है कि जो हम सुनते है वह भाषा य बोली है और जो देखते है वह लिपि य लेखन प्रणाली है। यह बात सिर्फ समझने के लिए है वैसे मनुष्य एक ज्ञानेंद्री को रोककर दूसरे का प्रयोग नही करता है। पाठन के उदाहरण से हम दोनो के एक साथ प्रयोग को समझ सकते है।

उपरोक्त भाषा और लिपि के अंतर का वर्णन का एक मात्र उद्देश्य यह सिद्ध करना रहा है कि हम भाषा और लिपि के स्वतन्त्र अस्तित्व को समझ सके। एक आम अदमी भाषा और लिपि में अंतर नही कर पाता है। परंतु शिक्षकों को यह अंतर समझना आवश्यक होता है। भाषा और लिपि में अंतर के साथ साथ घनिष्ठ सम्बंध होता है, यही कारण है कि हम दोनो को अलग अलग करके नही समझ पाते। अब हम अंतर की तरह दोनो में सम्बंध भी सूचीबद्ध कर लें।

1.5.3 लिपि और बोली में सम्बंध

- भाषा (बोली) और लिपि दोनो ही समाज विशेष की संस्कृति का प्रतीक होती है। परिणामतः पहचान और स्वाभिमान का कारण भी बनती है। हम विदेश में अपनी मातृभाषा को बोलने का अवसर मिलने पर सुखद अनुभव करते है। यदि आप अपनी भाषा को बोलने वाले व्यक्ति को उत्तराखंड से बाहर पाते है तो उसे तुरंत ही पहचान लेते है। साथ ही समय उपलब्ध रहने पर परिचय बढ़ाकर अपनी भाषा में वार्तालाप भी करने का अवसर प्राप्त कर लेते होंगे।
- अंतर में हमने समझा कि भाषा को समाज में रहते हुए हम सीख ही लेते है, जबकि लिपि सीखने के लिए शिक्षण की आवश्यकता होती है। लेकिन यह नैसर्गिक अधिगम की प्रक्रिया मातृ-भाषा में ही होती है। अन्य भाषाओं के सीखने के लिए हमें शिक्षण य अनुदेशन की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा जब तक कि हम उस भाषा विशेष के लोगों के मध्य रहने न लगे। अतः दोनो में ही शिक्षण की आवश्यकता होती है।
- भाषा सूक्ष्म व अस्थायी तत्व होती है। इस को स्थूल व चिरस्थायी बनाने के लिए लिपि अपना सम्बंध निभाती है।

- दोनो ही अभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भ्रमरहित व बाधारहित सम्प्रेषण में दोनों एक दूसरे की पूर्ति करती है। आप शिक्षक के रूप में कोई विषय बच्चों को समझाने का प्रयास करते है। बच्चों की समझ को सुदृढ़ करने और समझ की गारण्टी प्रदान करने के लिए आप अपने व्याख्यान के साथ साथ श्यामपट्ट पर मुख्य बिंदु लिखने की कोशिश जरूर करते होंगे या करेगें। अतः अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में दोनो अन्योन्याश्रित होती है।

अभ्यास प्रश्न

4. विश्व में लगभग कितनी भाषाएँ बोली जाती है?
5. विश्व में लगभग कितनी लिपियाँ प्रचलित है?
6. नेशनल जिओग्रफिक मासिक पत्रिका के अनुसार कितनों दिनों में एक भाषा लुप्त हो जाती है?
7. बोली और लिपि में कोई दो अंतर बताइये

1.6 लिपि के विकास का इतिहास

लिपि के विकास क इतिहास भी बहुत रोचक और लम्बा है। मानव ने अपनी अभिव्यक्ति को स्थायी बनाने के लिए कई तरह के प्रयोग किए है। जिन्हें हम गुफाओं में प्राप्त चित्रों से शूरू करते हुए, शिलालेखों, ताम्रपत्रों, भोजपत्रों, पुस्तकों, वेबसाइटों आदि आदि पर एक नजर डालकर समझ सकते है। बोली या बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए आप अपने सामने वाले व्यक्ति को अपना संदेश य विचार संप्रेषित कर सकते है और एक समय विशेष का प्रयोग ही कर सकते है। बोलचाल की भाषा की सीमा को पार करते हुए एक लिपि (यहाँ लिखित भाषा कहना अधिक उचित होगा) समय और स्थान के परे सम्प्रेषण का कार्य करती है। शायद मनुष्य की यही आवश्यकता उसे लिपि के सर्जन के लिए बाध्य करती है। मानव ने हजारों प्रयोग किए होंगे जिनसे संप्रेषण के अनेकानेक माध्यमों का जन्म हुआ। लिपि विकास किसी भी मानव संस्कृति के लिए क्रांतिकारी घटना रही होगी। जैसा की विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में किसी न किसी तरह मूर्त संप्रेषण/अभिव्यक्ति के चिन्ह मिल जाते हैं। इससे हमें एक बात तो समझ लेनी चहिए कि लिपि किसी भी विकसित सभ्यता का अनिवार्य तत्व होती है। जरा कल्पना कीजिए कि भाषा (बोली) के जन्म से मानव को समूह बनाकर रहने का अवसर मिला होगा। आपसी सहमति बनी होगी। आपसी व्यवहार के नियम बने होगें। सामूहिक जीवन सुखद, सुरक्षित और सामंजस्यपूर्ण हो गया होगा। आप बोलचाल की भाषा के सहारे सिर्फ सामूहिक जीवन की तो कल्पना कर सकते है पर वर्तमान में विद्यमान देशों और राष्ट्रों की कल्पना नही कर सकते। अर्थात वृहद समुदाय के सदस्यों को सामूहिक नियमों का पालन करवाने के लिए लिखित कनून, सरकार, प्रशासन आदि की जरूरत होती है। प्रशासन के लिए लिपि अनिवार्य शर्त होती है। यही कारण है की स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत हम राष्ट्रभाषा सुनिश्चित तो

नही कर सके पर प्रशासनिक भाषा और लिपि हमने सुनिश्चित की या करनी पड़ी। शायद इन सब बातों से आपके मस्तिष्क में लिपि की अनिवार्यता और इसके विकास की आवश्यकता तो स्पष्ट हो चुकी होगी। अब हम लिपि के विकास पर एक ऐतिहासिक नजर डालते है।

विश्व की सभ्यताओं के इतिहास में हम देखते हैं कि सर्वप्रथम लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व मेंसोपोटामिया की सभ्यता के शहर सुमेंर (वर्तमान ईरान इराक वाला क्षेत्र) में कीलक्षर/कीलाकार लिपि का विकास हुआ था। यह लिपि मिट्टी के फलकों पर उत्कीर्ण की जाती थी(चित्र 1)। इस लिपि में चित्रात्मक व रेखात्मक दोनो ही प्रकार के चिन्हों का प्रयोग किया जाता था।

चित्र 1: मेंसोपोटामियां की कीलाक्षर लिपि (चित्र श्रोत: https://www.haikudeck.com/mesopotamia-inventions-education-presentation-2xuiSNCZba#slide3)

वर्तमान लिपि से स्पष्टरूप से संबंधित प्रतीत होती हुई प्राचीन लिपि 3000 वर्ष पूर्व शिलालेखों में दिखाई देती है। इन हजारों वर्षों के सफर में हजारों पड़ाव मिलते है। गुफाओं में प्राप्त चित्रकारी को अधिकतर भाषाविद लिपि का हिस्सा नहीं मानते हैं। लेकिन अभिव्यक्ति को स्थायी करने के लिए चित्र पद्धति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। यह चित्रकारी चित्रकला की विशाल परंपरा का एक हिस्सा ही मानी जाती रही है। जब कोई चित्र/प्रतिकृति (image) सतत रूप से किसी पदार्थ, उत्पाद या परिणाम को वर्णित करने लगती है तब इस तरह के वर्णन को चित्रलिपि (Pictogram) की संज्ञा दी जाती है। हमारी प्राचीनतम सैंधव सभ्यता के अवशेषों से पता चलता है कि यहाँ भी चित्रलिपि का प्रयोग किया जाता था(चित्र 2)।

चित्र 2: हणप्पा सभ्यता की चित्र लिपि (चित्र श्रोत: https://www.harappa.com/script/parpola8.html)

जो चर्चा हमें बाद में करनी चाहिए थी वह अभी करना जरूरी हो रहा है। बात यह है कि चित्र के माध्यम से संप्रेषण लिपि के विकास की शुरुआत तो है पर शुद्ध लिपि के विकास के बाद भी हमने चित्र पद्धति क प्रयोग बंद नही किया है। आज भी राष्ट्रीय राजमार्गों पर सार्वजनिक स्थलों जैसे कि रेलवे स्टेशन, विमानपत्तन पर चित्र के माध्यम से संप्रेषण किया जाता है(चित्र 3)। इसका कारण है कि चित्रों के माध्यम से सम्प्रेषण में भ्रम की सम्भावना कम से कम होती है।

चित्र 3: आधुनिक चित्र संप्रेषण चिन्ह(चित्र श्रोत: https://www.pinterest.com/tris112397/pictograms/)

चित्रलिपि में जब अमूर्त विचारों को सम्प्रेषित करने की क्षमता आ जाती है तब हम इसे विचारलिपि य भावलिपि (Ideogram) कहते है। चित्रलिपि और भाव लिपि में सिर्फ तत्व के प्रतिनिधित्व का अंतर है। एक में मूर्त पदार्थों का वर्ण करते हैं और दूसरे में अमूर्त विचारों का वर्णन करते हैं। जब इस सितारे

के चित्र के माध्यम से हम आकाश के तारों का वर्णन करें तो इसे हम चित्रलिपि का एक उदाहरण कह सकते है। 'तारा' शब्द लिखने के अलावा हम इस चित्र को बनाकर अपनी बात कह सकते है। परंतु जब तारे के चित्र के माध्यम से हम रात्रि, शांति, शीतलता आदि भावों को प्रदर्शित करने लगते है तब इसे हम भावलिपि की संज्ञा देते है। प्राचीन चित्र पद्धति के कई चित्र आज की वर्णमाला के अक्षर के रूप में परिवर्तित हो गए हैं।

चित्रलिपि से वर्णचिन्ह की ओर जाना मानव मस्तिष्क की बड़ती हुई अमूर्त चिंतन की क्षमता का द्योतक है। जब प्रतीक चिन्ह शब्दों का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं तब प्रतीकलिपि (Logograms) का विकास होता है। इसका प्रयोग आज भी होता है। बहुत सी कंपनियों के चिन्ह ही उनके नाम का प्रतिनिधित्व करते है। आप बैंक ऑफ इंडिया को लिखने के लिए आप सितारे के चिन्ह का प्रयोग कर सकते है। यूनीलीवर कम्पनी के लिए (U) क चिन्ह प्रयोग कर सकते है। सुमेर की कीलाक्षर लिपि भी एक प्रकार की प्रतीकलिपि ही थी। वर्तमान में चीन की भाषा में प्रतीक चिन्हों का प्रयोग देखा जा सकता है। चीनी वर्णमाला के कई वर्ण एक ध्वनि मात्र को नहीं बल्कि सम्पूर्ण शब्द (या शब्द के अर्थ) को वर्णित करते हैं या शब्द के एक भाग को वर्णित करते हैं।

इस परंपरा से अलग दूसरी प्रणाली है जहां वर्ण-चिन्ह (य चित्र) भाषा के शब्द को नहीं ध्वनि को वर्णित करते हैं। इसे कूटलेखन(Rebus Writing) नाम दिया गया है। जब कभी भी उस ध्वनि का प्रयोग शब्दों में होता है तो उस ध्वनिचिन्ह(कूटचिन्ह) को उस शब्द में जोड़ दिया जाता है। ध्वनिकूट हमें वर्तमान वर्णमाला की ओर अधिक पास ले आते है। आज भी हम अपनी अभिव्यक्ति के कूट तैयार करते रहते है। कूटध्वनि के अधुनिक उदाहरण से समझ सकते है कि एक ध्वनि कैसे एक शब्द को य शब्द के भाग को प्रदर्शित करती होगी। उदाहरण के लिए same too you की जगह same 2 you, Night को ध्वनि कूट में Ni8 भी तो लिख देते है और Today को 2Day।

जब कोई प्रतिकृति (Image) भाषा के स्वर या व्यंजन वर्ण का प्रतिनिधित्व न करके शब्दांश/स्वरांश (Syllable का प्रतिनिधित्व करती है तब हम उसे स्वरांश लिपि (Syllabary) कहते हैं। जापान की भाषा में इस शब्दांश लेखन प्रणाली का प्रयोग किया जाता है। प्राचीन मिस्र और सुमेंर की लिपियों में भी शब्दांश लेखन का प्रयोग मिलता है। शब्दांश लिपि हमें वर्तमान वर्णमाला के सबसे निकटतम पायदान तक पहुँचा देती है। जहां एक वर्ण-चिन्ह सिर्फ एक ध्वनि को प्रतिनिधित्व करता है। अरबी और यहूदी जैसी समी(Semetic) भाषाओं की लिपि प्रणाली में सिर्फ व्यंजनों (क ख ग च आदि) की सहायता से ही शब्द लिखे जाते थे। स्वर(अ इ उ आदि) का चिन्ह पाठक को स्वयं अपने विवेक से समझना होता था। यही व्यंजक वर्णमाला वर्तमान भाषाओं की वर्णमाला का सूत्रपात करती है। यहाँ तक हम एक चिन्ह एक स्वर तक पहुच चुके होते है। परंतु शुद्ध स्वर अक्षर (Vowel) के चिन्ह को तैयार नही कर सके थे। इतिहास में सर्वप्रथम यूनानियों ने स्वर अक्षरों की पूर्ति करके शुद्ध व पूर्ण वर्णमाला को जन्म दिया।

1.7 विभिन्न भाषाओं की लिपियाँ

विभिन्न भाषाओं की लिपियों के अध्ययनके लिए हम वर्तमान से भूतकाल की ओर बढ़ेंगे अर्थात जिन लिपियों का हम प्रयोग करते हैं उनकी उत्पत्ति व प्रकृति के अध्ययन करते हुए प्राचीन लिपियों के बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

हमारे प्रदेश उत्तराखंड में मुख्य रुप से तीन भाषाएं हिंदी, संस्कृत, और अंग्रेजी प्रयोग की जाती है। अतः हम इन्ही भाषाओं की लिपियों पर मुख्य रूप से ध्यान देंगे हैं। अप यह तो सुने ही होंगे कि हिंदी में प्रयुक्त लिपि का नाम देवनागरी लिपि है। आइये इसके बारे में जानते है,

1.7.1भारतीय लिपियाँ

क. **देवनागरी लिपि:** हिंदी और संस्कृत भाषाएं वर्तमान समय में देवनागरी लिपि में ही लिखी जाती है। हिंदी और देवनागरी लिपि तो एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं। परिणाम स्वरूप देवनागरी को हिंदी लिपि भी कहते हैं इसका एक नाम नागरी लिपि भी है। इसके नामकरण के कारण को भी स्पष्ट रूप से पहचाना नहीं जा सका है। अलग-अलग विद्वान अपनी अपनी कल्पना के आधार पर (क्योंकि साक्ष्य का अभाव है) इसकी व्याख्या करते हैं।

i. प्रथम मत के अनुसार यह लिपि नगरीय (शहरों की) सभ्यता में जन्मी और प्रचलित रही।
ii. द्वितीय मतानुसार गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा प्रयोग की जाती रही।
iii. तृतीय मतानुसार यह लिपि देवनगर स्थान में उत्पन्न हुई।
iv. एकमत के अनुसार यह लिपि काशी और आसपास के क्षेत्र में विकसित हुई। काशी को देवनगर भी कहते हैं। इसलिए इसका नाम देवनागरी हो गया। दक्षिण भारत में इसका नाम 'नंदी-नागरी' लिपि भी है, जो इसका संबंध काशी शिव और प्राचीनतम नगर वाराणसी से जोड़ता है।

इस लिपि का विकास 1000 से 1200 ई० के लगभग प्राचीन नागरी लिपि से माना जाता है। प्राचीन नागरी लिपि के अभिलेख आठवीं शदी से 16 शदी तक दक्षिण भारत में मिलते हैं। देवनागरी लिपि में सामान्यरूप से 52 अक्षर बताये जाते है। जिनमें से 49 अक्षर वर्त्मान समय में अधिक प्रचलन में है, और 3 का हिंदी में प्रयोग नगण्य हो गया है। संस्कृत भाषा में ज़रुर सभी 52 अक्षरों का प्रयोग किया जाता है। संस्कृत में प्रयुक्त अक्षरों के आधार पर देवनागरी लिपि में अक्षरों की संख्या 56/57 तक पहुँच जाती है। प्राचीन समय में संस्कृत भाषा ब्राम्ही लिपि में लिखी जाती रही है। अतः उन अक्षरों को ब्राम्ही लिपि का हिस्सा मानकर छोड़ दिया जाता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए की देवनागरी लिपि का जन्म भी ब्राम्ही लिपि से ही हुआ है।

ख. **ब्राह्मी लिपि:** ब्राह्मी लिपि को कई लिपियों की लंबी श्रंखला की जननी कहा जा सकता है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 198 लिपियाँ इस लिपि से निकली है। लगभग सभी भारतीय भाषाओं (उर्दू जैसी

एकाध को छोड़कर) की लिपियों के अलावा नेपाल, बांग्लादेश आदि कई ऐशियायी देशों की भाषाअओं की लिपियाँ इसी से जन्मी है। यह एक प्राचीन भारतीय लिपि है जो 350 ई० पू० से 300 ई० तक भारत के अधिकतम भाग पर प्रचलन में रही। प्रो0 ब्यूलर के अनुसार इस लिपि में 41 अक्षर थे जिनमें 9 स्वर और 32 व्यंजन थे(Buhler, 1898)। इस लिपि के नामकरण के पीछे कई मत हैं जो आपस में संबंधित भी है। आइये हम इन मतो को जानें।

i. प्रथम मत के अनुसार भगवान ब्रह्मा ने इस लिपि को बनाया था इसलिए इसे ब्राम्ही कहते है।
ii. द्वितीय मत के अनुसार ब्रह्मज्ञान यानी वेद ज्ञान के संरक्षण (स्थायित्व) हेतु इस लिपि की रचना हुई थी।
iii. तृतीय मत के अनुसार ब्राह्मणों ने इसको बनाया और इसका प्रयोग किया इसलिए इसका नाम ब्राह्मी लिपि हो गया।

कई पाश्चात्य विद्वान भ्रम, अहम आदि विकारों के कारण इसकी उत्पत्ति चीनी य सामी लिपि से मानते हैं। ऐसी कल्पना करना भी अकल्पनीय बात है। सामी से एकाधिक समानता ब्राह्मी लिपि में तो है, परंतु दोनों में एक से अधिक मूलभूत अंतर है। जैसे कि यह लिपि बाएं से दाएं लिखी जाती है जबकि सामी लिपि दाईं से बाईं ओर लिखी जाती है। सामी में केवल 22 अक्षर हैं जबकि ब्राह्मी में 41 अक्षर होते हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि ब्राह्मी में वर्णों की आकृति वृत्तात्मक भी हैजबकि अन्य विदेशी लिपियों में इस तरह की अक्षर रचना नहीं देखी जाती है। अत: यह एक भारतीय भूभाग पर उत्पन्न लिपि ही है। इस लिपि की दो उत्तरी और दक्षिणी शैलियां मानी जाती हैं। उत्तरी शैली से निम्नलिखित लिपियों का विकास हुआ है;

i. **गुप्त लिप:** यह लिपि गुप्त वंश के राजाओं के अभिलेखों, जैसे कि प्रयाग प्रशस्ति आदि अभिलेख, में मिलती है।
ii. **कुटिल लिपि:** यह गुप्त लिपि से ही जन्मी एक लिपि है। इसमें स्वरों की मात्राएं कुटिल या टेढ़ी हो जाती हैं। इसलिए इसको कुटिल लिपि कहते हैं। इससे नागरी और शारदा लिपियों का विकास हुआ है।
iii. **प्राचीन नागरी लिपि**: इस लिपि की पूर्वी शाखा से बंगला लिपि और पश्चिमी शाखा से राजस्थानी, गुजराती, महाराष्ट्री आदि लिपियां विकसित हुई है।
iv. **शारदा लिपि:** इस लिपि का विकास प्राचीन समय में कश्मीर और पंजाब में हुआ। 10वीं शताब्दी के लगभग इस लिपि का प्रयोग होता था। कश्मीरी, गुरूमुखी, डोगरी आदि लिपियां इसी से निकली है।
v. **बांगला लिपि:** यह लिपि बंगला उड़िया आदि भाषाओं में प्रयोग की जाती है। इस लिपि से असमी, मणिपुरी भाषाओं की लिपियों का जन्म हुआ है।

ब्राह्मी की दक्षिणी शैली से निम्नलिखित लिपियां उत्पन्न हुई।

i. **पश्चिमी लिपि**: यह लिपि पांचवी सदी के लगभग प्रयोग में थी। गुजरात, नासिक, कोंकण आदि क्षेत्रों से मिले लेखों में इस लिपि के प्रयोग मिलते हैं।
ii. **मध्य प्रदेशी लिपि:** यह लिपि चौथी से आठवीं शदी के लगभग प्रयोग में रही। मध्य प्रदेश, बुंदेलखंड, हैदराबाद आदि के लेखों में इस लिपि का प्रयोग होता था।
iii. **तेलुगु-कन्नड़**: यह लिपि तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं की लिपि है।
iv. **कलिंग लिपि:** यह लिपि सातवीं से ग्यारहवीं शदी के मध्य कलिंग के क्षेत्र में यह लिपि प्रचलन में थी।
v. **ग्रंथ लिपि:** मलयालम और तेलुगु लिपियां ब्राह्मी की इसी शाखा से निकली मानी जाती हैं। इसमें संस्कृत ग्रंथों की रचना हुई इसलिए इसका नाम ग्रंथ लिपि हो गया।
vi. **तमिल लिपि:** सातवीं शताब्दी से आज तक यह तमिल भाषा की लिपि है।

उपरोक्त विवेचन से हम कह सकते हैं कि ब्राह्मी लिपि सभी भारतीय भाषाओं की लिपियों की जननी है। ब्राह्मी लिपि को खरोष्ठी लिपि से भी सम्बंधित माना जाता है।

ग. **खरोष्ठी लिपि:** प्राचीन भारतीय लिपियों में से एक खरोष्ठी लिपि भी है यह लिपि 350 ई० पू० से 200 ई० तक प्रचलन में मानी जाती है। इस लिपि का प्रयोग प्रचीन गांधार (वर्तमान अफगानिस्तान) के क्षेत्र में किया जाता था। उस क्षेत्र में इस लिपि ने गांधारी-प्राकृत और संस्कृत भाषाओं की सेवा की। सम्राट अशोक के शाहबाजगढ़ी और मानसेरा (दोनो ही स्थान पंजाब में है) के अभिलेखो में इस लिपि का प्रयोग मिलता हैं। अशोक के अलावा शक और कुषाणों के अभिलेख भी खरोष्ठी में ही है। कुछ विद्वान इसे एक भारतीय लिपि मानते हैं और कुछ इसे आर्मेइक लिपि मानते हैं। इसमें 37 वर्ण हैं जिनमें 5 स्वर और 32 व्यंजन होते हैं। अक्सर यह लिपि दाए से बाए लिखी जाती है।

सभी वर्तमान भारतीय लिपियों में एक समानता देखी जा सकती है। वह इस प्रकार है;

- लगभग सभी लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से जन्मी हैं।
- सभी ध्वन्यात्मक हैं, एवं कवर्ग, चवर्ग आदि में बंटे हैं।
- सभी के लिखने में मात्रा का प्रयोग होता है।
- सबमें संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है।
- सबके वर्ण रूप में काफी मिलते हैं।
- स्वर, व्यंजन, मात्रा तीनों का अलग प्रावधान है।

1.7.2 विदेशी लिपियाँ

भारतीय लिपियों के विवरण के बाद हम कुछ विदेशी लिपियों से एक संक्षिप्त परिचय करते हैं।

i. **लैटिन या रोमन लिपि:** इस लिपि का जन्म विदेशी धरती पर जरूर हुआ पर आज हम इसे विदेशी लिपि नही कह सकते है। आज यह लिपि हमारी द्वितीय प्रशासनिक भाषा की लिपि है और भारत के संविधान द्वारा अधिनियमित भी है। अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त लिपि (ABCD) को रोमन लिपि कहते हैं। वर्तमान में यह सर्वाधिक प्रयुक्त लिपि है इसमें 26 वर्ण होते हैं, जिनमें 5 स्वर और 21 व्यंजन है। इन 26 वर्णों की 45 ध्वनियां होती है। यह विश्व की अनेक भाषाओं की लिपि है। क्या आप जानते है कि लैटिन, फ्रांसीसी, अंग्रेजी जैसी मुख्य भाषाओं के साथ साथ एक भारतीय भाषा भी इस लिपि का प्रयोग करती है। यह भाषा भारत के पूर्वोत्तरी राज्य मिजोरम की मुख्य भाषा है, जिसे मिजो या लुसाई(Mizo/ Lusahai भाषा कहते हैं। जैसा कि यूरोप की अधिकांश लिपियां यूनानी लिपि से ही उत्पन्न हुई है अतः यह लिपि भी यूनानी लिपि से ही जन्मी मानी जाती है।

ii. **यूनानी लिपि:** यह विश्व की प्राचीनतम लिपि में से एक है। इसमें 24 अक्षर होते हैं। इसके ही प्रथम दो अक्षर अल्फा(α) और बीटा(β) के आधार पर ही अंग्रेजी में वर्णमाला को अल्फाबेट कहते हैं। इसे हम यूरोपी लिपियों की जननी कह सकते हैं इसकी उत्पत्ति उत्तरी सामी लिपि से मानी जाती है।

iii. **सामी लिपि:** सामी लिपि भी प्राचीनतम लिपि में प्राचीनतम कही जा सकती है। इसमें 22 वर्ण होते हैं। इस लिपि का प्रयोग 1000 से 800 ईसापूर्व के आसपास किया जाता रहा। इसकी उत्तरी शाखा से अर्मेइक और फोनेशी लिपियों का जन्म होता है। इसकी दक्षिणी शाखा से अरबी लिपि का विकास हुआ है।

iv. **अरबी लिपि:** वर्तमान में प्रचलित लिपियों में से यह एक प्रमुख लिपि है। मूलतः इसमें 28 अक्षर होते है। यह दाएं से बाएं लिखी जाती है। यह अरब, अफगानिस्तान, फारस आदि स्थानों पर प्रचलित है। फारसी भाषा में चार अक्षर और अधिक जोड़कर 32 अक्षरों के साथ इस लिपि का प्रयोग किया जाता है। भारतीय भाषा उर्दू में फारसी में प्रयुक्त अक्षरों के अलावा पांच अक्षर और अधिक जोड़कर 37 अक्षरों का प्रयोग किया जाता है।

v. **चीनी लिपि**: यूरोपीय और भारतीय लिपियों से अलग चीनी लिपि भी एक प्राचीनतम लिपि है। इसका विकास 3200 से 2700 ईसा पूर्व के लगभग हुआ था। यह चीन की भाषाओं की प्रमुख लिपि है वैसे मंडारिन ही चीन कि मुख्य लिखित भाषा है। यह विचित्र चित्रात्मक लिपि है (汉字 漢字) जिसे विश्व की एक मात्र सनातन लिपि की संज्ञा दी जा सकती है । क्योकि यह लिपि प्रचीन काल से आज तक प्रचलन में है। इसमें हिंदी य अंग्रेजी की तरह अक्षर ध्वनियां नही होती है। इसमें हजारों स्वरांश (logograms) प्रयोग किए जाते है। चीनी भाषा में साक्षर होने के लिए तीन से चार हजार स्वरांशो/अक्षरों/ चित्रों आदि को सीखने की आवश्यकता होती है।

अभ्यास प्रश्न

8. सर्वप्रथम लिपि का विकास कहाँ हुआ?
9. चित्रलिपि और भाव लिपि में क्या अंतर है?
10. देवनागरी लिपि में कुल कितने अक्षर होते है?
11. भारतीय लिपियों कोई दो विशेषताएँ लिखिए।
12. ब्राम्ही लिपि की दक्षिणी शाखा से उत्पन्न दो लिपियों के नाम लिखिए।
13. कौन सी भारतीय भाषा रोमन लिपि में लिखी जाती है?

1.8 सारांश

हमने देखा कि जो भाषाएँ हम लोग इतनी आसानी से प्रयोग करते है वे हजारों वर्षों के मानव उद्विकास और प्रयास का परिणाम है। समान्य मानव भाषा के जन्म को पहिचाना एक कठिन कार्य है, पर जो भाषाएँ आजकल प्रचलन में है उनकी जड़ो को जरूर पहिचाना जा सकता है। भाषा के बारे में अध्ययन करना एक बहुत बड़ा और जटिल क्षेत्र है। यहाँ जटिल को कठिन नही समझना चाहिए। जब भाषा के उद्भव और विकास के तार हमें एक निश्चित स्थान पर नही ले जाते हो; हम किसी एक दृष्टिकोण से भाषा की समग्रता को नही देख सकते हो; जब इसके अध्ययन में विषयों की परत दर परत खुलती जाती हो, तब इसे जटिल कहना ही उचित होगा । हम देख सकते है कि एक शताब्दी में ही आधुनिक भाषाशस्त्र ने दर्जनों विषयों को जन्म दे दिया है। उदाहरण के लिए भाषाशास्त्र(Linguistics) से जन्मे कुछ विषयों के नाम हम देख सकते है: ऐतिहासिक-भाषाशास्त्र, प्रायोगिक-भाषाशास्त्र, सामाजिक-भाषाशास्त्र, मनो-भाषाशास्त्र, तुलानात्मक-भाषाशास्त्र, शैक्षिक-भाषाशास्त्र, निदानात्मक-भाषाशास्त्र इत्यादि। भाषा के विषय में अध्ययन करते हुए हम नये-नये विषयों से रुबरू होते जा रहे है। वैसे यह एक रोचक विषय है और हम शिक्षकों को इसकी जानकारी होनी चहिए। किसी भाषा के इतिहास और जड़ो को जानने से उस भाषा में हमारी रुचि भी बढ़ती है और हमें सीखने में आसानी भी होती है। आज के बहुभाषिक समाज में, विशेषरूप से भारतीय समाज में एक से अधिक भाषाओं को सीखना जरूरी हो जाता है। वैसे जब हमें मालूम हो कि एक से अधिक भाषाओं को जानना संज्ञानात्मक प्रक्रमण को गति प्रदान करता है तब हम स्वयं ही एक से अधिक भाषाओं को सीखने और विद्यार्थियों को सिखाने के लिए स्वप्रेरित होंगे।

1.9 शब्दावली

1. **बहुभाषिकिता (Multilingualism) -** दो य दो से अधिक भाषाओं का अंतर्सम्बंध और अंतर्क्रि
2. **बहुभाषी (Polyglot or Multiglot) -** एक से अधिक भाषाओं का प्रोयोग करने वाला

3. **संप्रेषण(Communication)** - सूचना, संदेश या तथ्यों का आदान प्रदान
4. **शैक्षिक-भाषाविज्ञान (Educational Linguistics)** - भाषा की शिक्षा मैं भूमिका का अध्ययन करने वाले
5. **द्विपदीयचर (Bipedal)** - दो पैरो पर चलने वाला जीव
6. **घोषयंत्र (larynx)** - गले का एक अंग जो स्वर उत्पन्न करता है
7. **गलकोश (Pharynx)** - मुख के पीछे का हिस्सा (स्वर के परिवर्तन और गुंजन के लिए)
8. **धवनि-गुंजन (Resonance)** - मनुष्य में स्वरों को अंतर से उतपन्न करने की शक्ति
9. **अनुकूलन (Adaptation)** - समायोजन परिस्थिति विशेष में ढाल लेना

10. **स्तनपायी (Mammal)** - अपने बच्चों को दूध पिलाने वाला जानवर
11. **प्रकल्पित (Devised)** -व्यवस्थिति और योजनाबद्ध तरीके से उत्पन्न
12. **तंत्रिका विज्ञान (Neurology)** - एक विषय जिसे अंग्रेजी में Neurology कहते है।
13. **अनुवांशिकी (Genetics) -** एक विषय जिसे अंग्रेजी में Genetics कहते है।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. लगभग 5000 वर्ष पूर्व
2. एक लाख से पचास हजार वर्ष पूर्व
3. भाषा रचना के कारण:
    a. मानव का परिवेश,
    b. उसके जिवन की अवश्यकताएँ तथा
    c. उसका विशेष शारीरिक गठन है
4. विश्व में लगभग छह हजार से अधिक भाषाएँ बोली जाती है?
5. विश्व में लगभग लगभग दो दर्जन लिपियाँ प्रचलित है?
6. 14 दिनों में (दो सप्ताह) दिनों में एक भाषा लुप्त हो जाती है?
7. बोली और लिपि में कोई दो अंतर:
    a. लिपि या लेखन भाषा की तरह कोई जैविक यह अनुवांशिक कारण नहीं होता है।
    b. जो हम सुनते है वह भाषा य बोली है और जो देखते है वह लिपि य लेखन प्रणाली है।
8. सर्वप्रथम लिपि का विकास मेंसोपोटामियाँ में हुआ?
9. चित्रलिपि और भाव लिपि में सिर्फ तत्व के प्रतिनिधित्व का अंतर है।
10. देवनागरी लिपि में कुल 52 अक्षर होते है?
11. भारतीय लिपियों कोई दो विशेषताएँ:
    a. सभी के लिखने में मात्रा का प्रयोग होता है।

b. सबमें संयुक्ताक्षरों का प्रयोग होता है।

12. ब्राम्ही लिपि की दक्षिणी शाखा से उत्पन्न दो लिपियाँ
    a. मध्य प्रदेशी लिपि
    b. तेलुगु-कन्नड़
13. मिजो भाषा (मिज़ोरम राज्य की भाषा) रोमन लिपि में लिखी जाती है?

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. Akkinaso, f. N. (1992). Schooling, language and Knowledge in literate and non-literate societies. Comparative Studies in Society and History, 34, 1, 68-109.
2. Borodotsky, L. (2001). Does Language Shape Thought? Mandarin and English Speakers' Conceptions of Time. Cognitive Psychology 43, 1–22
3. Brown, R. (1973). A first language. Cambridge, MA: Harvard University Press.
4. Buhler, J. G. (1898). On the origin of the Indian brahma alphabet. Strassburg: K. J. Trübner.
5. Daniels, P. T. (2003) Writing system. In M. Aronoff & J. Rees-Miller (Eds.) The handbook of Linguistics (pp. 43-80). Oxford: Blackwell.
6. DayTrnaslation (n. d.). World languages. https://www.daytranslations.com/world-languages
7. Dua, H. R. (2008). Ecology of multilingualism: language, culture and society. Mysore: yashoda publication.
8. Dwivedi, K. D. (2010) Bhasha-Vigyan evam Bhasha-Shastra (12th ed. Hindi). Varanasi: Vishwavidyalay Prakashan.
9. Ethnologue (2017). Language of the world. Available on https://www.ethnologue.com/browse/names
10. Fillmore, L. W. and Snow, C. E. (2000). What teacher need to know about language. Washington DC: Centre for Applied Linguistics.
11. Garcia, O. (2009). Bilingual education in 21st century: global perspective. West Sussex (UK): Wiley-Blackwell.

12. Halliday, M. A. K.(1975). Halliday's Functions of Language. Retrieved from www.communityinclusion.org/elm/Professionals/.../Halliday-handout.d
13. Halliday, M.A. K. (1993). Towards a Language-Based Theory of Learning. Linguistics and Education 5, 93- 116. Retrieved from lchc.ucsd.edu/mca/Paper/JuneJuly05/HallidayLang Based.pdf.
14. Halliday, M.A.K. (2004). Three Aspects of Children's Language Development: Learning Language, Learning through Language, Learning about Language. In J.J. Webster (ed.), The Language of Early Childhood: M.A.K. Halliday, pp 308-326, Ch. 14. New York: Continuum.
15. Kristeva, J. (1989). Language the Unknown: An initiation into linguistics. New York: Columbia University Press.
16. Kumaravadivelu, B. (2006). Understanding language teaching: from method to post method. New York: Routledge.
17. Larson, R. K., Deprez, V., Yamakido, H. (2010). The evolution of human language: Biolinguistic perspective. Delhi: Cambridge University press.
18. Linguistics Society of America (n.d.). http://www.linguisticsociety.org/content/how-many-languages-are-there-world.
19. NCERT (2005). National Curriculum Framework, 2005.
20. Negus, V. E. (1946). The comparative anatomy and physiology of the larynx. New York: Hafner publishing Company.
21. Richards, J. C., & Renandya, W. A. (2002). Methodology in language teaching: anthropology of current practice. New Delhi: Cambridge University Press.
22. Rymer, R. (2012). Vanishing Voices, National Geographic (July). Available on http://ngm.nationalgeographic.com/2012/07/vanishing-languages/rymer-text
23. Sharma, R. (2010). Bhasha aur samaaj (7th ed. Hindi). New Delhi: Rajkamal Publication.
24. Sixtyvocab.com (n.d.). How Many Alphabets are there in the World? http://www.sixtyvocab.com/blog/many-alphabets-world/

25. Williams, R. (1977). Marxism and Literature. Oxford: Oxford University Press.
26. Worldstandards.eu (n.d.). The world's scripts and alphabets. http://www.worldstandards.eu/alphabets/
27. Yule, G. (2006). The study of language (3rd Ed.). New Delhi: Cambridge University Press.

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भाषा की उत्पत्ति के विभिन्न आधार कौन से है?
2. भाषा की उत्पत्ति से सम्बंधित विभिन्न आधारों में से आप किससे अधिक सहमत है और कौन?
3. लिपि के विकास को रेखांकित करते हुए विश्व की विभिन्न लिपियों की चर्चा कीजिए।
4. भारतीय लिपियों के विकास वर्णन करते हुए सिद्ध कीजिए कि खरोष्ठी लिपि अनेक भारतीय लिपियों की जननी है।

इकाई 2- भाषा और शिक्षा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 'शिक्षण भाषा मुक्त वातावरण में संभव नही है' के सामान्य अवधारणा की सार्थकता
2.4 भाषा प्रवीणता/ सभी शिक्षकों के लिए भाषा प्रवीणता की अनिवार्यता
2.4.1 भाषा प्रवीणता
2.4.2 शिक्षक के लिए भाषा प्रवीण/ निपुण होना क्यों आवश्यक है?
2.5 भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भाषा मानव के लिऐ एक विलक्षण शक्ति, क्षमता और पहिचान है। आप गहनता से विचार करेंगे तो देख सकते है कि भाषा का मानव प्रजाति से एक विशिष्ट सम्बंध है। रेयमण्ड विल्लिअम्स (Williams, 1977) महोदय ने तो यहाँ तक कह दिया कि भाषा की कोई भी परिभाषा प्रत्यक्ष य अप्रत्यक्ष रूप से मानवमात्र की परिभाषा है। भाषा कों परिभाषित करना अत्यंत दुरूह व अनन्त की खोज करने जैसा है। इसकी अनन्त तरीके से अनंत परिभाषाए दी जा सकती है। इसकी अमूर्त प्रकृति के कारण फ्रांसीसी मनोभाषाविज्ञानी(Psycholinguist) जूलिया क्रिस्तेवा(1989) ने कहा कि भाषा आज भी अज्ञात तत्व है। भाषा को समझना और इसकी उत्पत्ति व प्रभाव के बारे में शोध करना किसी एक विषय क्षेत्र की बात नही है। दर्शन से लेकर तंत्रिकाविज्ञान जैसे नवीनतम विषयों में मानवभाषा के विषय में अध्ययन किया जाता है। वर्तमान भाषाविज्ञानियों का मानना है कि भाषा की क्षमता को समझने के लिए ठोस अंतर्विषयी सहयोग की आवश्यकता है। इन विषयों में विकासवादी-जीवविज्ञान, नृशास्त्र, मनोविज्ञान और तंत्रिका-विज्ञान आदि प्रमुख है।

भाषा का शिक्षा की विषय और क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका है क्योकि भाषा सिर्फ सम्प्रेषण का माध्यम ही नही वरन व्यक्ति के विचारों का आधार होती है। यह तथ्यात्मकरूप से सिद्ध किया जा चुका है कि भाषा या शब्दों का मानव मस्तिष्क पर वृहद असर होता है (Borodotsky, 2001)। उदाहरण हेतु आप मानव के धार्मिक व्यवहार को लें सकते है और आप देख सकते है कि विभिन्न धर्मो के अनुआयियों

के मध्य जो मतभेद और संघर्ष होता है वह मुख्यतः भाषा का ही संघर्ष है। कुछ धार्मिक शब्द जो किसी धर्म के माननें वालों के लिए उर्जा का श्रोत तथा पवित्रता का आधार होते है और उस धर्म विशेष के मानने वाले व्यक्तियों में अनुशासन व संयम का संचार करते है, उन्ही शब्दों का प्रभाव अन्य धर्म के व्यक्तियों के लिए शून्य होता है, और कभी कभी घृणा, विद्वेष आदि नकारात्मक भावनाओं के साथ साथ उर्जा का क्षय भी करते है। कहने का अर्थ यह है कि किसी विशेष भाषासमूह का सदस्य होने और संस्कृति विशेष का अनुयायी होने के आधार पर हमारे चिंतन की क्षमता और दिशा दोनो ही प्रभावित होती है। भाषा के अभाव में सम्प्रेषण और चिंतन दोनो ही सम्भव नही है। इस प्रकार हम देख सकते है कि भाषा के अभाव में शिक्षा की व्यवस्था का अस्तित्व कल्पनातीत लगने लगता है। भाषा और शिक्षा अन्योन्याश्रित सांस्कृतिक तत्व है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को को पढ़ने के उपरांत आप:

1. भाषा और शिक्षा के सम्बंध की विवेचना कर सकेंगे;
2. शिक्षण में भाषा की भूमिका का मूल्यांकन कर सकेंगे;
3. भाषा प्रवीणता के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कर सकेंगे;
4. शिक्षकों के लिए भाषा-प्रवीण होने की आवश्यकता की समालोचना कर सकेंगे;
5. भाषा का शिक्षण माध्यम के रूप में वर्णन कर सकेंगे।

2.3 'शिक्षण भाषा मुक्त वातावरण में संभव नही है' के सामान्य अवधारणा की सार्थकता (Significance Of The General Notion That Teaching Cannot Take Place In A Language-Free Environment.)

पिछली इकाई में आप भाषा और लिपि के उद्भव और विकास का अध्ययन कर चुके है। भाषा को यदि हम परिभाषित करें तो शायद मानव जीवन से अलग करके परिभाषित नहीं कर सकते हैं। आप कह सकते हैं कि मानव ने भाषा की रचना नहीं की, आप इसे दैवीय शक्ति द्वारा उत्पन्न मान सकते है। इसे नैसर्गिक क्षमता य अनुवांशिक क्षमता भी मान भी सकते हैं। परंतु आप इस बात से इंकार नहीं कर सकते की लिपि की रचना मानव ने की है। लिपि देश और काल की सीमा से परे एक स्थाई तत्व है। जब लिपि सीखने की बात आती है तब अधिगम, शिक्षण, शिक्षालय आदि संप्रत्यय अकस्मात ही सामने आ जाते हैं। दूसरी ओर यदि हम शिक्षालय की आवश्यकता और उत्पत्ति पर विचार करें तो हम समझ सकते हैं कि किसी भी सभ्यता और काल मे शिक्षालय की स्थापना किसी समुदाय विशेष ने अपनी संस्कृति व ज्ञान की रक्षा और इनके स्थायित्व और हस्तांतरण के लिए की होगी। एक विशेष संदर्भ में कहा जा सकता है कि आज भी

विद्यालय य शिक्षण संस्थाओं का यही कार्य है। भाषा (बोली और लिपि) की उत्पत्ति और विकास का इतिहास भी मानव संस्कृति की रक्षा, स्थायित्व तथा हस्तांतरण से जुड़ा हुआ है। अतः भाषा और विद्यालय दोनो की उत्पत्ति का उद्देश्य एक ही लगता है। इस प्रकार ये दोनो एक दूसरे के पूरक या अन्योन्याश्रित कहे जा सकते है। विद्यालय में चलने वाली प्रक्रिया जिसे शिक्षण अधिगम कहते हैं, के अस्तित्व में आने के दो आधारभूत और अधिव्यापित (Overlapping) कारण हो सकते हैं। प्रथम कारण यह कि समाज/सभ्यता विशेष की भाषा और लिपि हो सकती है जिसे अगली पीढ़ी द्वारा सीखने की आवश्यकता ने शिक्षण और शिक्षालयों को जन्म दिया होगा। द्वितीय स्वयं लिपि और भाषा की उपलब्धता। भाषा उपलब्ध होने से हम अगली पीढ़ी को सांस्कृतिक उपलब्धियां हस्तांतरित कर सकते है। यदि भाषा नहीं होती तो मानव में शायद पशुओं से अधिक संप्रेषण नहीं होता। जब संप्रेषण का माध्यम नहीं तो ज्ञान और अनुभव के हस्तांतरण की कल्पना नहीं की जा सकती थी। अतः शिक्षण, विद्यालय आदि आदि की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। इस प्रकार भाषा शिक्षण का उद्देश्य और माध्यम दोनों ही बन जाती है। भाषा शिक्षण की प्रक्रिया और परिणाम दोनों में इस तरह से मिश्रित है कि हम अंतर नहीं कर सकते हैं यदि हम शिक्षण से भाषा तत्व को निकाल दें, तो यह शुद्ध दूध में से दूध और पानी अलग अलग निकालने जैसा होगा अर्थात अनावश्यक विघटन कह सकते हैं।

हम एक दूसरे पहलू से भी भाषा के शिक्षण से संबंध का अध्ययन करते हैं। एक प्रश्न पर ध्यान दीजिए और अपने उत्तर को नीचे दिए हुए रिक्त स्थान पर लिखिए।

शिक्षण क्यों? अथवा शिक्षण की आवश्यकता क्यों?

विभिन्न शब्दों में आपके पास इस प्रश्न के जितने भी उत्तर होंगे उनको हम सार रूप में एक उत्तर में समेट सकते हैं। वह यह है कि शिक्षण बच्चों को अधिगम कराने य सिखाने के लिए किया जाता है।

अब अधिगम क्या है?

यहाँ आपके मस्तिष्क पर दबाव डाले बिना बताना चाहूँगा कि जब बच्चा अपने पर्यावरण से अंतर्क्रिया करते हुए अपने अनुभवों का अर्थ समझ लेता है या एक विशेष अर्थ को गढ़ लेता है तब हम उसे सीखना कह सकते हैं। साधारण अर्थ में सीखना एक अर्थ निरूपण की प्रक्रिया (Meaning Making Process) है, जो कि भाषा की प्रक्रिया से अलग नहीं है (Halliday, 1993)। हेलीडे के अनुसार जो भाषा की सारोत्पत्ति(Ontogenesis) की प्रक्रिया है वही समान प्रक्रिया सीखने की भी है। जब कोई बच्चा भाषा सीखता है तो सीखने की जड़ या बुनियाद को सीखता है(Learning to Learn)। विद्यालय में शिक्षक और विद्यार्थियों के मध्य संवाद के माध्यम से शिक्षा की प्रक्रिया भाषा के आदान प्रदान(शिक्षण) की प्रक्रिया हो जाती है है। भाषा का प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे हमारे अनुभव ज्ञान में परिवर्तित होते हैं। अतः हम भाषा और अधिगम को अलग-अलग करते हुए नहीं समझ सकते हैं। दूसरी ओर हम जानते है कि अधिगम और शिक्षण दोनो एक प्रक्रिया के दो पहलू है। अतः अधिगम और शिक्षण; शिक्षण और

भाषा एक दूसरे से सम्बंधित हो जाते हैं। विद्यालयी संदर्भ में अधिगम का आधार शिक्षण होता है और शिक्षण का आधार भाषा।

जब हम किसी भी विषय को पढ़ाते हैं तब हम उसमें क्या पढ़ाते हैं? उदाहरण हेतु विज्ञान में बल, ऊर्जा आदि और वाणिज्य में कराधान, लेखा आदि। ये बल, ऊर्जा, कराधान, लेखा, आदि सभी शब्द विशेष ही हैं। जब कोई बच्चा किसी विषय के संदर्भ विशेष में प्रयुक्त तकनीकी शब्दों का अर्थ समझने लगता है, तब वह उस विषय को समझने लगता है। हमेशा से अमूर्त संप्रत्ययों (Concepts) और विशेष अवधारणाओं को व्युत्पत्तिशास्त्रीय (Etymological) आधार पर विश्लेषित और स्पष्ट करने की परंपरा रही है, जोकि भाषा शास्त्र का एक अंग ही है। जब भी कोई शिक्षक भाषाशास्त्रीय तकनीकों का प्रयोग करते हुए शिक्षण करता है तब उसका शिक्षण अधिक सार्थक और प्रभावी होता है। हम अक्सर सुनते है कि अमुख शिक्षक/विद्यार्थी में सम्प्रत्ययी समझ (Conceptual Understanding) अच्छी है या इसका अभाव है। इस समझ का आधार सम्प्रत्ययों का व्युत्पत्तिशास्त्रीय विश्लेषण करने का गुण होता है। हम देख सकते हैं कि भाषा इस प्रकार एक शिक्षण की तकनीक भी बन कर उभरती है।

शिक्षण की प्रक्रिया को जो परिणाम है, जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह कोई भी सूचना/ज्ञान नहीं होता है बल्कि समाज विशेष द्वारा स्वीकृत वैधता प्राप्त ज्ञान ही विद्यालयों में हस्तांतरित किया जाता है। और इसका माध्यम सिर्फ और सिर्फ भाषा (लिपि) ही हो सकती है। भाषा द्वारा प्राप्त ज्ञान की पहचान की जा सकता है और उसका पुनः परीक्षण किया जा सकता है(Akinanaso, 1992)। अंत में एक बात और ध्यान देने वाली है कि शिक्षण अधिगम प्रक्रिया प्रमुख रूप से एक संज्ञानात्मक(Cognitive) प्रक्रिया है। बच्चा सीखता तभी है जब वह संज्ञानात्मक रुप से सक्रिय अधिगमकर्ता होता है; अर्थात जब वह चिंतन(Thinking) करता है। हम जानते हैं कि भाषा चिंतन प्रक्रिया का आधार ही नहीं बल्कि उसका हिस्सा भी होती है। अतः भाषा के अभाव में चिंतन और चिंतन के अभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की कल्पना करना भी कल्पना से परे हैं। अतः हम कह सकते हैं कि भाषा-मुक्त वातावरण में या भाषा विहीन वातावरण में शिक्षण की संभावना नहीं है। भाषा शिक्षण-अधिगम की आवश्यक शर्त है। इस लिए शिक्षण वृत्ति (Teaching Profession) को अपनाने वाले व्यक्ति भाषा प्रवीण होने जरूरी है। भाषा-प्रवीणता के सम्प्रत्यय की चर्चा हम इसी इकाई में आगे करेंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम से क्या तात्पर्य है?
2. भाषा और अधिगम किस प्रकार सम्बंधित है?
3. सम्प्रत्ययी समझ (Conceptual Understanding) का क्या आधार है?

2.4 भाषा प्रवीणता और सभी शिक्षकों के लिए भाषा प्रवीणता की अनिवार्यता (Proficiency in A Language/Languages as An Imperative for all Teachers)

2.4.1 भाषा प्रवीणता

अभी तक आप भाषा के संप्रत्य को अच्छी तरह से समझ ही चुके होंगे। यदि आप प्रवीणता शब्द के अर्थ को जानते हैं तो आसानी से भाषा प्रवीणता के संप्रत्यय और महत्व को समझ सकते हैं।

प्रवीणता से तात्पर्य किसी कार्य को कुशलता पूर्वक करने की क्षमता से है। इस प्रकार हम भाषा प्रवीणता को किसी व्यक्ति के अन्दर किसी भाषा को कुशलता पूर्वक प्रयोग करने की क्षमता कह सकते हैं। अब बात यह आती है कि भाषा को तो हम सभी प्रयोग करते हैं, जो पढ़े लिखे नहीं हैं वे लोग भी सामाजिक अंतर्क्रिया के लिए भाषा का प्रयोग करतें ही हैं। फिर यह कुशलतापूर्वक भाषा प्रयोग से क्या तात्पर्य है? इस प्रश्न का एक निहितार्थ यह है कि भाषा के प्रयोग में कुछ कौशल (Skill) तो निहित जरूर है, जो व्यक्ति को सीखने पड़ते होंगे। यदि आप विभिन्न राजनीतिज्ञों, वकीलों, धार्मिक उपदेशको के भाषणों व प्रवचनों पर ध्यान दें तो आप कुशलतापूर्वक और अकुशलतापूर्वक भाषा प्रयोग के अंतर को समझ सकते हैं। शिक्षण-वृत्ति (Teaching Profession) भी एक ऐसा कार्य है जिसमें भाषा के कौशलों को सीखना और अभ्यास करना अनिवार्य शर्त होती है। वे कौन से भाषा कौशल है जो एक शिक्षक को अभ्यास के साथ सीखने चाहिए? आप यदि भाषा के अवयवों पर ध्यान देंगे तो आसानी से उत्तर प्राप्त कर सक्ते है किसी भी भाषा में चार मूलभूत कौशल होते हैं जिन्हें भाषा के प्रयोगकर्ता को सीखना होता है। यह चारों कौशल अंतर्सम्बंधित और अधिव्यापित भी है। सिर्फ अध्ययन सुविधा के लिए हम अंतर करके समझने की कोशिश कर रहे है।

i. सुनना अथवा श्रवण (Listening)
ii. बोलना (Speaking)
iii. पढ़ना (Reading)
iv. लिखना (Writing)

भाषा के सीखने में हम इन्ही चार मूलभूत कौशलों को अर्जित करते हैं। अर्जन की विधियाँ व प्रविधियाँ इस इकाई के विषय क्षेत्र में नही आती है, अतः भाषा अर्जन कैसे करते है इसकी चर्चा नही करेंगे। इन चार प्रमुख तथा मूलभूत कौशलों के अलावा सहित्यिक-संस्कृतिक कौशल भी होते है। आगे बात यह आती है कि कोई भी सामान्य व्यक्ति भाषा को सुनना और बोलना जानता ही है और यदि वह साक्षर भी है तो पढ़ना और लिखना भी जानता है, तो क्या हम उसे भाषा प्रवीण नहीं कह सकते हैं? इस प्रश्न के उत्तर के पहले हम जान लें कि प्रवीणता के संप्रत्यय में दो तत्व अनिवार्य रूप से होते हैं:

i. शुद्धता (Clarity) और
ii. प्रवाह (Fluency)

अतः जो व्यक्ति किसी भाषा का शुद्धता के साथ प्रवाहमय तरीके से प्रयोग करता है, तो उसे हम भाषा-प्रवीण कहते हैं। भाषा प्रवीणता को हम भाषा प्रयोग के विभिन्न आयामों या चारो कौशलों के आधार पर परख सकते हैं। यह चार भाषा कौशल प्रथमदृष्टया तो सामान्य सी बात लगते हैं परंतु इनमें कुशलता प्राप्त करना एक लंबी साधना का कार्य है। एक भाषा प्रवीण व्यक्ति के लिए भाषा को विभिन्न पक्षों का ज्ञान होना प्रथम शर्त होती है और भाषा के ये पक्ष भाषा के विभिन्न कौशलों और उनके विकास से अभिन्न रूप से जुड़े हुए है। इन्हे भाषाशस्त्र के उपविषयों के रूप में जांते है जो कि इस प्रकार हैं;

i. ध्वनि विज्ञान (Phonology)
ii. शब्द विज्ञान (Morphology)
iii. व्याकरण/संरचना (Syntax)
iv. अर्थविज्ञान (Semantics)

भाषा के इन पक्षों को सीखना ही भाषा सीखना होता है। अब भाषा के इन पक्षों का ज्ञान हमारे भाषा प्रयोग को कैसे प्रभावित करता है? इसको भी समझ लेते है। इन पक्षों का ज्ञान किसी भाषा की ध्वनि को भ्रमित हुए बिना सुनने, शुद्ध व स्पष्ट उच्चारण करने/बोलने, लिखे हुए शब्दों को पढ़ने और उनका अर्थ समझने तथा स्पष्टता व शुद्धतापूर्वक लिखने की कुशलता प्रदान करता हैं। अर्थात सभी कौशलों का विकास करता है। साथ ही भाषा के चारों कौशलों पर प्रवाहमयता का संप्रत्यय भी लागू होता है। प्रवाहमय बोलना, पढ़ना, और लिखना तो हम आसानी से समझते हैं परंतु प्रभावपूर्ण सुनना थोड़ा अनोखा लगेगा। आपने अनुभव किया होगा कि हम(सभी सामान्य व्यक्ति) किसी भी वक्तव्य को सक्रियता के साथ ध्यानपूर्वक अर्थ समझते हुए लंबे समय तक नहीं सुन सकते हैं। बशर्ते कि हमारी उस विषय में विशेष रुचि हो या हम विशिष्ट व कुशल श्रोता हो। कुशल श्रोता वह होता है जो अपने संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण स्थापित कर लेता है। अर्थात कुशल श्रोता उच्च-संज्ञानात्मक(Metacognitive) रणनीतियों साथ सुनता है। यह कौशल सुनने के अभ्यास से विकसित हो पाता है। प्रथम भाषा ज्ञान तो अचेतन अवस्था में भी होता रहता है लेकिन यदि आप द्वितीय भाषा को उदाहरण के रूप में लेते हैं तो आप समझ सकते हैं कि द्वितीय भाषा अंग्रेजी(उदाहरणार्थ) के भाषणों, व्याख्यानों, गीतों को समझने के लिए हमें सुनने में भी कुशलता प्राप्त करनी होती है। समझते हुए या अर्थसहित शब्दों को सुनने के लिए भाषा के श्रवण कौशल में भी शुद्धता और प्रवाह की आवश्यकता होती है।

2.4.2 शिक्षक के लिए भाषा प्रवीण/निपुण होना क्यों आवश्यक है?

भाषा सूचना, तथ्यों और सामान अर्थों में ज्ञान की वाहक होती है। यदि आप शिक्षक-वृत्ति से संबंधित कार्यों पर थोड़ा सा भी ध्यान देंगे तो आप स्वयं ही समझ जाएंगे कि भाषा-निपुणता एक शिक्षक होने के लिए अनिवार्य शर्त है। हम इस विषय पर बिंदुवार चर्चा करेंगे।

1. जो ज्ञान एक शिक्षक प्राप्त करता है वह भाषा के माध्यम से ही प्राप्त करता है और भाषा के माध्यम से ही अपने विद्यार्थियों को सौप देता है। यदि आप ज्ञान को सामान्य अर्थ से अलग

रचनात्मकतावादी(Constructivist) संदर्भ में ही समझना चाहते हैं तब भी भाषा के बिना ज्ञान संभव नहीं है। क्योंकि भाषा हमारी चिंतन प्रक्रिया की हिस्सा होती है। हम एक भाषाई समुदाय के सदस्य होने के नाते एक विशेष प्रकार से सोच रखने लगते हैं(Borodotsky, 2001)। अतः यह कहना प्रत्येक तरह से वैध ही होगा कि एक शिक्षक शिक्षण से पूर्व जो ज्ञान और कौशल अर्जित करता है वह भाषा के माध्यम से ही करता है और जो ज्ञान वह अगली पीढ़ी में संप्रेषित करता है वह भी भाषा के माध्यम से ही करता है।

2. यदि आप कक्षाकक्ष संप्रेषण के संप्रत्य को समझ रहे हैं तो आपको यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि भाषा ही संप्रेषण का मुख्य माध्यम होती है। भाषा के बिना संप्रेषण पानी के बिना नाव चलाने जैसा ही होगा। संप्रेषण (Communication) की प्रक्रिया में भाषा एक अनिवार्य तत्व है। यहाँ सांकेतिक भाषा को भी शामिल करते हुए कह सकते हैं कि भाषा नहीं संप्रेषण नहीं (No language, No Communication)।

   संप्रेषण की सामान्य प्रक्रिया में कुछ बाधक तत्व होते भी हैं। इन बाधक तत्वों में एक बड़ा वर्ग भाषायी बाधक तत्वों का होता है। कक्षाकक्ष में प्रभावी और पक्के(insured) संप्रेषण के लिए शिक्षकों में शैक्षिक-भाषाविज्ञान का ज्ञान होना परम आवश्यक हो जाता है। विषय कोई भी हो पर भाषा के बिना संवाद स्थापित करना और उसको नियंत्रित और निर्देशित करना संभव नहीं है। अतः सभी शिक्षकों को अनिवार्यरूप से भाषा निपुण होना चाहिए है।

3. भाषा की प्रकृति की अच्छी समझ होने से शिक्षक अपने वक्तव्यों और व्याख्यानों को कुशलतापूर्वक संरचित कर सकते हैं। वह अपने प्रश्नों को इस प्रकार से संरचित कर सकते हैं कि विद्यार्थियों का मस्तिष्क-उद्वेलन (Brain-Storming) सम्भव हो सके।
4. भाषा निपुण शिक्षक भाषा विषय नहीं भी पढ़ाते हो तब भी अपने सामान्य व्यवहार से विद्यार्थियों में भाषा ज्ञान का संचार करते रहते हैं। अर्थात भाषा का क्रियात्मक ज्ञान भूमिका-प्रतिमान (Role Modelling) पद्धति से चलता रहता है।
5. भाषा निपुण शिक्षक बच्चों के उत्तरों के पूर्ण न होने पर भी उनको समझ लेते हैं, बच्चों के उत्तरों की पूर्ति करके उन्हें प्रोत्साहित कर सकते हैं। इस पूर्ति करने के उदाहरण से आप सहमत नहीं भी हो सकते हैं। लेकिन यदि आप स्मरण कर सके तो आपके बोलने और लिखने में आपकी माता, प्रथम शिक्षिका/शिक्षक और घर में बड़े लोगों द्वारा शब्द/ध्वनि/ अक्षर पूर्ति और संशोधन का विशेष योगदान रहा है। शिक्षकों कों भीं बच्चों के अपूर्ण वाक्यों को स्वीकार करते हुए पूर्ण करना होता है।
6. भाषा निपुण शिक्षक बच्चों की बातों की अच्छी समझ रखते हैं। जिससे उन्हें बच्चों की समझ और पूर्व-ज्ञान का पूर्ण-ज्ञान होता है। शिक्षक बच्चों के मध्य होने वाले संवाद के प्रारूप को भलीभांति समझते है। और इन सब बातों के विश्लेषण से वे शिक्षण की दिशा पहचानने और निर्धारित करने में निपुण हो जाते हैं। इस प्रकार भाषा-निपुणता शिक्षण-निपुणता की आधार ही नही अपितु आवश्यक शर्त हो जाती है।

7. भाषा निपुण शिक्षक बच्चों में भाषा-विकास के चरणों को अच्छे से समझते हैं और तदनुरूप विकास की प्रक्रिया को पोषित और संवर्धित करते हैं। वे बच्चों की भाषायी गलतियों को अवसरनुकूल संभालते, नियंत्रित करते और सुधारते है। भाषा निपुण शिक्षक बच्चों के जीवन में प्रथम-भाषा और उनकी घर की भाषा के महत्व को समझते हुए उसको खत्म नहीं करते हैं, बल्कि उसका बच्चों में ज्ञान के संवर्धन हेतु प्रयोग करते हैं। वे अपनी भाषा या विद्यालयी भाषा बच्चों पर थोपते नहीं है। अर्थात स्कूल की भाषा(अकादमिक भाषा) को गृह भाषा की कीमत पर नहीं सिखाते हैं। फलतः शैक्षिक भाषाशास्त्र का ज्ञानी शिक्षक सभी वर्ग और संस्कृतियों के बच्चों का विकास करने में सक्षम होता है। ऐसे शिक्षक बहुभाषायी कक्षा में भाषायी अल्पसंख्यक बच्चों का उचित ध्यान रख पाते हैं।
8. विद्यालय पूर्व बच्चों में अलग-अलग भाषाओं का विभिन्न स्तर पर विकास होता है। हो सकता है कि अपनी मातृभाषा में बच्चा बहुत उत्कृष्ट प्रगति किया हो पर देखा गया है कि भाषाशास्त्र और भाषा-विकास के उचित ज्ञान के अभाव में शिक्षक उस भाषा विकास को नकार देते हैं। देखा गया है कि अग्रेंजी माध्यम विद्यालयों में बच्चे द्वारा हिंदी या अपनी मातृभाषा के प्रयोग पर अर्थदण्ड भी लिया जाता है। शैक्षिक भाषाविज्ञान का सत्य ज्ञानी शिक्षक इस तरह के दण्ड निर्धारण तो दूर बल्कि अपनी उपस्थिति में इस तरह कई नियम स्वीकार नही कर सकता है।
9. प्रौढ़ स्तर के व्यक्तियों के लिए तय मानकों का प्रयोग करते हुए बच्चों की भाषा प्रगति का मूल्यांकन खतरनाक हो सकता है। यह मानक बच्चे के अंदर हीन भावना उत्पन्न करते हुए बच्चे को हमेशा हमेशा के लिए कक्षा में चुप रहने वाला बना सकता है। एक भाषा निपुण शिक्षिका/शिक्षक एक अच्छे मूल्यांकनकर्ता भी साबित होते हैं, क्योंकि उन्हे भाषा की प्रकृति और विकास के चरणों का सही ज्ञान होता है।

   किसी भी विषय का शिक्षक हो उसको अपने विषय के शिक्षण और मूल्यांकन हेतु भाषा के मूलभूत कौशलों का प्रयोग करना और छात्रों से करवाना पड़ता है। शिक्षक बच्चों द्वारा लिखे उत्तरों का भाषाशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए उसके सही होने या सही के निकट होने का निर्णय कर सकने में सक्षम होते हैं।
10. शिक्षकों को समाज के शिक्षित सदस्य होने के नाते उस समाज की भाषा की प्रकृति, व्याकरण, शब्द संरचना आदि की जानकारी होना अनिवार्य होता है। वे अपने समुदाय की भाषा को संवर्धित करते रहते है। भाषा का कार्य क्या है? और यह अपना कार्य कैसे करती है? इसकी जानकारी होने से वे सामाजिक अंतर्क्रिया को एक उचित दिशा प्रदान कर सकते है। साथ ही शिक्षक स्वयं अच्छे पाठक और लेखक भी हो सकते हैं।
11. आप जानते ही है कि भाषा एक संस्कृतिक तत्व और समाजीकरण की प्रक्रिया की प्रमुख आधार और घटक होती है। जब बच्चा 5 से 6 वर्ष की आयु में विद्यालय आता है तब उसकी मातृभाषा के माध्यम से सामाजीकरण की प्रक्रिया काफी हद तक हो चुकी होती है। यदि इस समय हम गृह-भाषा को विद्यालय परिसर में प्रतिबंधित कर देते हैं और विद्यालयी भाषा को अनिवार्य कर देते हैं

(जैसा कि तथाकथित अंग्रेजी माध्यम की विद्यालयों में हो रहा है) , तो हम अबतक हुए सामाजीकरण के प्रतिफल को बर्बाद कर देते हैं। भाषा के सामाजिक संदर्भ को समझने वाला भाषा निपुण शिक्षक समाजीकरण की प्रक्रिया के महत्व को समझता है। वह प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा तो नहीं सीख सकता है पर कक्षाकक्ष में एक उदारता पूर्ण माहौल बनाकर बच्चों की विद्यालयी भाषा सीखने तक उनकी पूर्व अर्जित क्षमताओं को क्षय होने से बचा सकता है। विद्यालय और घर की भाषा अलग अलग होने पर भी विद्यालय को सामाजिक विकास की दृष्टि से हानिकारक नहीं होना चाहिए। यह तभी संभव है जब शिक्षक भाषा और संस्कृति के सम्बन्ध की समझ रखता हो और बालक के विकास में इसके प्रभाव को अंदाजा लगाने में सक्षम हो।

उपरोक्त विश्लेषण और चर्चा से यह नहीं समझना चाहिए कि सभी शिक्षक भाषा-शिक्षक का प्रशिक्षण प्राप्त करें, या सभी शिक्षक भाषा शिक्षण का कार्य ही करें। बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि शिक्षक भाषा प्रयोग के प्रति संवेदनशील हो तथा भाषा की संरचना और कार्य की समझ रखते हो। किसी व्यक्ति के जीवन में, किसी परिवार में, किसी समाज में भाषा/मातृभाषा/सामुदायिक भाषा का क्या महत्व होता है इसकी समझ रखते हो। शिक्षक को शैक्षिक-भाषाविज्ञान की जानकारी होना आवश्यक है क्योंकि वह एक संप्रेषक है, शिक्षक है, मूल्यांकन करता है, क्योंकि वह समाज का एक शिक्षित व्यक्ति है, क्योंकि वह समाजीकरण की प्रक्रिया का प्रतिनिधि है (Fillmore and snow, 2000).

2.5 भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में (Language as a Medium of Teaching)

जैसा कि पूर्व में भी चर्चा की जा चुकी है कि भाषा का क्षेत्र अत्यधिक वृहद है। इसका क्षेत्र विस्तार व्यक्ति के समस्त कार्य-व्यापार और विषयों तक है। यही कारण है की भाषा के विषय में विज्ञान, मानविकी, सामाजिक विषयों, तकनीकी विषयों आदि सभी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में अध्ययन किया जाता है। प्रसिद्ध समाज-भाषाशास्त्री(Socio-Linguist) हैलीडे महोदय ने भाषा की तीन परिप्रेक्ष्य बताएं हैं।

1. भाषा सीखना (एक विषय के रूप में): हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, तमिल आदि भाषाओं का अध्ययन करना।
2. भाषा द्वारा सीखना (माध्यम के रूप में): हिंदी माध्यम से विज्ञान, गणित, इतिहास विषयों का अध्ययन करना।
3. तृतीय भाषा के विषय में सीखना (किसी भाषा के विषय में भाषाशास्त्रीय विवेचना): अंग्रेजी भाषा की प्रकृति, ध्वनिशास्त्र, शब्दशास्त्र, सरंचना आदि की विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन करना।

यहां हम द्वितीय संदर्भ 'भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में' का अध्ययन करेंगे। जब हम भाषा एक माध्यम की चर्चा करते हैं तो इसका सीधा संबंध उस भाषा से होता है जो विद्यालय में पाठ्यचर्या के

निष्पादन हेतु प्रयोग की जाती है। भाषा का यह कार्य अपने आप में गहन निहितार्थ रखता हैं। भाषा का सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में कार्य करना एक ऐसी विशेषता है जो हमें मानव सभ्यता की जड़ की ओर सोचने के लिए बाध्य करती है। हमें लगता है कि भाषा में व्यक्ति के विचार, सूचना, ज्ञान आदि को दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने की क्षमता ने ही समाज की पृष्ठभूमि रखी होगी। क्योंकि कोई भी समाज स्थायी नियमों और परंपराओं से संगठित होता है, जो कि एक स्पष्ट सम्प्रेषण के माध्यम के अभाव में सम्भव नही हो सकता है। विद्यालय की संकल्पना भी यहीं से उद्भूत होती हुई प्रतीत होती है। जब एक पीढ़ी अपनी संचित ज्ञान व उपलब्धियां दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का प्रयास करती है और भाषा जैसे उपकरण के द्वारा हस्तांतरित करने में सक्षम भी होती है, तब विद्यालय जैसी संस्था का उदय होता है। प्रसिद्ध रूसी मनोवैज्ञानिक वायगोत्स्की (Vygotsky, 1962) ने भी इसी संदर्भ में भाषा के दो कार्य बताये हैं। प्रथम भाषा एक मनोवैज्ञानिक उपकरण है जो हमारी चिंतन और तर्क की प्रक्रिया में सहायता करती है और दूसरा भाषा एक सांस्कृतिक उपकरण के रूप में कार्य करती है। वायगोत्स्की के दोनो ही संदर्भ भाषा को शिक्षण की प्रक्रिया से जोड़ते है। प्रथम ज्ञान रचना प्रक्रिया (चिंतन) और दूसरा संरचित ज्ञान(संस्कृति) की ओर इसारा करता है। उन्होंने सामूहिक ज्ञान को ही संस्कृति कहा है। अतः सामूहिक ज्ञान या संस्कृति के आदान-प्रदान-प्रसार हेतु भाषा एक प्रमुख माध्यम है। इस सांस्कृतिक प्रसार की प्रक्रिया के लिए जो एक स्थान निश्चित हो जाता है उसे हम विद्यालय कहते है। जब इन्ही संस्कृतिक उपलब्धियों को लिखित भाषा के माध्यम से स्थायित्व और वैद्यता प्रदान करके एक संरचित रूप प्रदान कर दिया जाता है तब हम इसे पाठ्यचर्या कह सकते हैं और इस पाठ्यचर्या के निष्पादन को शिक्षण कहा जाता है जो किसी न किसी भाषा के माध्यम से ही संभव है। यहाँ हम देख सकते है की शिक्षण ही नही अपितु सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था के उद्भव और संचालन में भाषा की मुख्य भूमिका है।

जब हम भाषा एक शिक्षण माध्यम की बात करते है तब किसी एक भाषा विशेष की बात नहीं कह सकते है। शिक्षण का माध्यम एकभाषी, द्विभाषी और बहुभाषी भी हो सकता है। यह कोई मानकीकृत भाषा जैसे कि हिंदी अंग्रेजी आदि हो सकती है और कोई उप-भाषा या बोली भी हो सकती है जैसे कि गढ़वाली, कुमाऊनी आदि।

प्रायः सभी विद्यालयों में शिक्षण के एक प्रमुख भाषा होती है जो कि एक विद्यालय प्रबंध समिति या सरकार द्वारा निर्धारित की जाती है। शासकीय प्रावधानों के अलावा शिक्षक और बच्चों की भाषा भी शिक्षण अधिगम के निर्धारण का कार्य करती है। उदाहरण के लिए सरकार ने हिंदी भाषा को शिक्षण माध्यम के रूप में स्वीकार किया है और शिक्षक व छात्र कुछ विद्यालयों में गढ़वाली य कुमाऊनी उपभाषाओं में संवाद करतें है। इस उदाहरण कों नकारात्मक रूप से नही लेना चाहिए। शिक्षण-अधिगम की सुगमता हेतु शिक्षण के माध्यम में परिवर्तन किया जा सकता है। इसका कारण आप जानते ही है कि शिक्षण का लक्ष्य बच्चों के व्यवहार परिवर्तन(अधिगम) करना और उनमें सूझ विकसित करना होता है। साथ ही आप यह भी जानते ही है कि कोई भी व्यक्ति अपनी प्रथम भाषा में शीघ्रता से समझता है। अतएव प्रभावशाली और भाषा प्रवीण शिक्षक किसी एक भाषा पर आश्रित नहीं रहता हैं। आज का समय

बहुआयामी, बहुभाषायी व बहुतकनीकी सुलभ है। हमें भाषा एक विषय से अलग भाषा एक माध्यम के संप्रत्यय को भी अच्छे से समझना होगा। हम जान रहे हैं कि भाषा सभी विषयों की आधारशिला है और कहीं ना कहीं किसी न किसी प्रत्येक विषय का शिक्षण भाषा शिक्षण ही होता है। अतः भाषा एक माध्यम के रूप में प्रत्येक विषय के ज्ञान में केंद्रीय भूमिका अदा करती है। बच्चे जिस भाषा को समझते हो, समझने के साथ उस में चिंतन करने की क्षमता रखते हो, वही भाषा एक उचित शिक्षण माध्यम हो सकती है।

शिक्षण का माध्यम होना भाषा के बहुआयामी कार्यों का एक पक्ष मात्र है। भाषा सिर्फ संप्रेषण का माध्यम नहीं है लेकिन संप्रेषण भाषा का एक प्रमुख कार्य है। हम स्पष्ट, प्रत्यक्ष व मूर्त कार्य कह सकते हैं। इसके अलावा भाषा का चिंतन प्रक्रिया का हिस्सा होना, संस्कृति का हिस्सा होना, समाजीकरण की प्रक्रिया का माध्यम होना आदि सभी अमूर्त व अप्रत्यक्ष कार्य कहे जा सकते हैं। आप जब अपनी कक्षा (Classroom) में बच्चों के सामने हो तब बच्चों से एक प्रश्न कर सकते है कि आप कहाँ है? उत्तर होगा कि कक्षा में/क्लास में। तब आप बच्चों से पूछिए कि क्लास कहाँ है? यहाँ उपस्थिति और दृष्टिगोचर वस्तुओं में आप किसे कक्षा कहते है? अनेक उत्तर बच्चों की तरफ से आपको प्राप्त हो सकते है। जैसे कोई कमरे को कक्षा कहेगा, कमरे में मेज, कुर्सी, श्यामपट आदि की उपस्थिति को कक्षा कहेगा। लेकिन यह सब वस्तुएं किसी अन्य कक्ष में भी हो सकती है जो किसी वार्ता या किसी सम्मेलन या परिचर्चा के लिए प्रयोग किया जाता हो। कक्षा-कक्ष(Classroom) के संप्रत्यय को निर्धारित करने वाला कारक शिक्षक और विद्यार्थियों के बीच में अंतर्क्रिया और संवाद होता है। इस संवाद का आधार भाषा ही होती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं भाषा सिर्फ शिक्षण का माध्यम नहीं है बल्कि शिक्षण का पर्याय व सारतत्व है जो कक्षा-कक्ष के संप्रत्य को सही रुप से परिभाषित करती है। भाषा के बिना शिक्षण की प्रक्रिया की कल्पना नहीं की जा सकती है। आप जरा सोचिए कि आप एक शिक्षक हैं और आप भाषा का प्रयोग किए बिना शिक्षण कार्य कर रहे हैं, शायद कल्पनातीत होगा।अंत में यही कह सकते है कि शिक्षक द्वारा भाषा का प्रयोग ही शिक्षण है।

अभ्यास प्रश्न

4. भाषा प्रवीणता में कौन से दो तत्व शामिल है?
5. भाषा के किन्ही दो पक्षों के नाम लिखिए।
6. शिक्षक को शैक्षिक-भाषाविज्ञान की जानकारी क्यों होनी चाहिए?
7. हैलीडे महोदय ने भाषा के कितने परिप्रेक्ष्य बतायें है?

2.6 शब्दावली

1. **अंतर्सम्बंधित (Interrelated)-** एक दुसरे से सम्बंधित या जुड़ा हुआ होना
2. **अधिव्यापित (Overlapping) -** एक दूसरे पर अच्छादित होना।

3. **बहुभाषिकिता (Multilingualism)** -दो य दो से अधिक भाषाओं का अंतर्सम्बंध और अंतर्क्रिया
4. **बहुभाषी (Polyglot or Multiglot) -** एक से अधिक भाषाओं का प्रोयोग करने वाला
5. **संप्रेषण (Communication) -** सूचना, संदेश या तथ्यों का आदान प्रदान
6. **शैक्षिक-भाषाविज्ञान (Educational Linguistics) -** भाषा की शिक्षा में भूमिका का अध्ययन करने वाले विषय
7. **व्युत्पत्तिशास्त्रीय (Etymological) -** शब्दों की उत्पत्ति और अर्थ निष्पत्ति से सम्बंधित विषय
8. **संज्ञानात्मक (Cognitive) -** ज्ञान और समझ प्राप्त करने की मानसिक प्रक्रिया से सम्बंधित
9. **मस्तिष्क-उद्वेलन (Brain-Storming)** - एक शिक्षण प्रविधि जिससे बच्चों में समस्या समाधान की क्षमता विकसित होती है।
10. **भूमिका-प्रतिमान (Role Modelling) -** एक शिक्षण अधिगम की विधि जिसमें बच्चे अनुकरण से सीखते है।
11. **घटक (Factor) -** एक वृहद तत्व या व्यवस्था का हिस्सा होना

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अधिगम/सीखना एक अर्थ निरूपण की प्रक्रिया
2. जो भाषा की सारोत्पत्ति)Ontogenesis) की प्रक्रिया है वही समान प्रक्रिया सीखने की भी होती है।
3. सम्प्रत्ययी समझ का आधार सम्प्रत्ययों का व्युत्पत्तिशास्त्रीय विश्लेषण करने का गुण होता है।
4. भाषा प्रवीणता के दो तत्व:
    a. शुद्धता
    b. प्रवाह
5. भाषा के पक्ष:
    a. ध्वनि विज्ञान (Phonology)
    b. शब्द विज्ञान (Morphology)
6. शिक्षक को शैक्षिक-भाषाविज्ञान की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि वह एक संप्रेषक है, शिक्षक है, मूल्यांकन करता है, क्योंकि वह समाज का एक शिक्षित व्यक्ति है, क्योंकि वह समाजीकरण की प्रक्रिया का प्रतिनिधि है।
7. हैलीडे महोदय ने भाषा के तीन परिप्रेक्ष्य बतायें है।

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. Akkinaso, f. N. (1992). Schooling, language and Knowledge in literate and non-literate societies. *Comparative Studies in Society and History*, 34, 1, 68-109.
2. Borodotsky, L. (2001). Does Language Shape Thought?: Mandarin and English Speakers' Conceptions of Time. Cognitive Psychology 43, 1–22
3. Brown, R. (1973). A first language. Cambridge, MA: Harvard University Press.
4. Dua, H. R. (2008). Ecology of multilingualism: language, culture and society. Mysore: yashoda publication.
5. Dwivedi, K. D. (2010) Bhasha-Vigyan evam Bhasha-Shastra (12th ed. Hindi). Varanasi: Vishwavidyalay Prakashan.
6. Fillmore, L. W. and Snow, C. E. (2000). What teacher need to know about language. Washington DC: Centre for Applied Linguistics.
7. Garcia, O. (2009). Bilingual education in 21st century: global perspective. West Sussex(UK): Wiley-Blackwell.
8. Halliday, M. A. K.(1975). Halliday's Functions of Language. Retrieved from www.communityinclusion.org/elm/Professionals/.../Halliday-handout.d
9. Halliday, M.A. K. (1993). Towards a Language-Based Theory of Learning. Linguistics and Education 5, 93- 116. Retrieved from lchc.ucsd.edu/mca/Paper/JuneJuly05/HallidayLang Based.pdf.
10. Halliday, M.A.K. (2004). Three Aspects of Children's Language Development: Learning Language, Learning through Language, Learning about Language. In J.J. Webster (ed.), The Language of Early Childhood: M.A.K. Halliday, pp 308-326, Ch. 14. New York: Continuum.
11. Kristeva, J. (1989). Language the Unknown: An initiation into linguistics. New York: Columbia University Press.
12. Kumaravadivelu, B. (2006). Understanding language teaching: from method to post method. New York: Routledge.
13. Larson, R. K., Deprez, V., Yamakido, H. (2010). The evolution of human language: Biolinguistic perspective. Delhi: Cambridge University press.

14. Linguistics Society of America (n.d.). http://www.linguisticsociety.org/content/how-many-languages-are-there-world.
15. NCERT (2005). National Curriculum Framework, 2005.
16. Richards, J. C., & Renandya, W. A. (2002). Methodology in language teaching: anthropology of current practice. New Delhi: Cambridge University Press.
17. Sharma, R. (2010). Bhasha aur samaaj(7th ed. Hindi). New Delhi: Rajkamal Publication.
18. Williams, R. (1977). Marxism and Literature. Oxford: Oxford University Press.
19. Yule, G. (2006). The study of language (3rd ed.). New Delhi: Cambridge University Press.

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. भाषा और शिक्षा के सम्बंध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
2. शिक्षण में भाषा की भूमिका कीं विवेचना किजिए।
3. भाषा प्रवीणता से आप क्या समझते है और शिक्षकों के लिए भाषा प्रवीण होना क्यों आवश्यक है?
4. 'भाषा नहीं संप्रेषण नहीं'(No language, No Communication)। इस वक्तव्य पर अपनी सहमति या असहमति तर्क सहित प्रस्तुत करें।

इकाई 3 - बहुभाषिकता
Multilingualism

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 बहुभाषिकता
3.4 कक्षा- कक्ष में भाषायी विभिन्नता
3.5 भाषाई पारिस्थितिकी
3.6 बहुभाषिकता एक संसाधन के रूप में
3.7 विद्यार्थियों की भाषाई पृष्ठभूमि
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री
3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों के अध्ययन से आप यह समझ सकते है कि भाषा की अवधारणा सरल के साथ-साथ अत्यधिक जटिल भी है। क्योंकि भाषा के संदर्भ में पूर्णरूपेण से कहना अत्यंत ही कठिन कार्य है। अलग-अलग विषयों के दृष्टिकोण से भाषा को कई तरह से परिभाषित किया जा सकता है। पिछली इकाई में हमने भाषा को मुख्य रूप से एक मौखिक और लिखित प्रतीकों की व्यवस्था के रूप में समझा था। यह भाषा की एक दृश्य व स्थूल अवधारणा है। यदि हम थोड़ा अंदर की परतों की ओर झांकने का प्रयास करते हैं तो और भी तथ्य समझ में आने लगते है। समाज-भाषिक(Sociolinguistic) दृष्टिकोण से भाषा सिर्फ प्रतीक चिन्हों की व्यवस्था मात्र नहीं होती है वरन भाषा किसी समाज के विचारों, मान्यताओं, विश्वासों, प्रतीकों, संवाद व सामाजिक रीति रिवाजों की वाहक भी मानी जाती है। किसी भाषा के शब्दों और व्याकरण के नियमों को सीख लेने मात्र से हम उस भाषा में कुशलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं, बल्कि हमें उस भाषा के प्रयोग के संस्कृतिक नियमों को भी सीखना पड़ता है। इसे भाषा का प्रयोगशास्त्र (pragmatics) कहते है। यहां चर्चा का विषय pragmatics नहीं बल्कि भाषा की अवधारणा में समाहित जटिल संदर्भ य अंदर कीं परते हैं, जिनका ज्ञान होना एक शिक्षक होने के नाते जरूरी हो जाता है। भाषा के विषय में यदि यह कहा जाए कि जितने चश्मे उतने रूप, तो यह अतिशयोक्ति नहीं कहा जा

सकता है। भाषा के विषय में तुलसीदास जी की एक पंक्ति सटीक लगती है *"जाकी रही भावना जैसी....."*। वस्तुस्थिति के विश्लेषण से ऐसा प्रतीत होता है कि भाषा-नीति और भाषा-शिक्षण के विषय में सरकारों, शिक्षक-शिक्षा संस्थानों, शिक्षकों, शिक्षण संस्थाओं आदि की भावना ठीक नहीं रही है। भारत ही नहीं वरन विश्व के अनेक बहुभाषायी देशों की स्थिति समान ही है। हमारी राजनीतिक व्यवस्था का एकभाषी होना या द्विभाषी होना एक मजबूरी य कमजोरी कही जा सकती है। जिससे कि एक या दो भाषाओं को ही प्रशासकीय भाषा का दर्जा प्राप्त हो सकता है। जबकि समाज में तो बहुत सी भाषाएं प्रचलित होती हैं। हमने पिछली इकाई में पढ़ा ही है कि संपूर्ण विश्व में लगभग 7000 भाषाएं बोली जाती हैं। हमारे देश में ही लगभग 1000 मातृभाषाएं और बोलियां प्रयोग की जाती है। अतः बहुभाषिकता इस धरा की एक सामान्य विशेषता है। हमारा देश तो बहुभाषी देशों का एक विशिष्ट मानक उदाहरण है, जहाँ प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति (प्राथमिक स्तर पर भी) द्विभाषी य त्रिभाषी होता है। लेकिन इस संदर्भ में शिक्षित होना कोई शर्त नहीं है व्यवसायिक व रोजगार सम्बंधी कारणों से भी लोग बहुभाषी हो जाते है। आप ध्यान देंगे तो पायेंगे कि बहुभाषिकता के कारण अनेक है।

द्विभाषिकता या बहुभाषिकता कोई शिक्षा के द्वारा पोषित तत्व ही नहीं है । यह एक नैसर्गिक सामाजिक लक्षण है। कुक (Cook, 2002) महोदय के अनुसार ***"दो भाषाओं का होना या प्रयोग उतना ही सामान्य तथ्य है जितना कि दो फेफड़ों का होना"***। उनके अनुसार तो सिर्फ एक भाषा का प्रयोग एक दुर्लभ घटना है। फिर भी हमारी अज्ञानता ने इस नैसर्गिक व्यवस्था को काफी नुकसान पहुचाया है। यद्यपि राजनीतिक, प्रशासनिक, शैक्षिक नीतियों के कारण बहुत सी भाषाएं विलुप्त होने की कगार पर हैं तथापि बहुभाषिकता समाज में विद्यमान है और ऐसा प्रतीत होता है कि भविष्य में भी रहेगी । बड़े-बड़े शहरों में कई भाषाओं के बोलने वाले विभिन्न भाषा क्षेत्रों से लोग आते हैं, और एक बड़े शहर का निर्माण करते हैं। अतः बड़े शहरों की शिक्षा व्यवस्था किसी एक भाषा पर निर्भर नहीं कर सकती हैं। हम शिक्षकों को विद्यार्थियों की प्रथम भाषा के प्रति थोड़ा संवेदनशील होने की आवश्यकता होती है जिससे कि जो प्रथम भाषा में उनका ज्ञान है उसको हम सही तरीके से शिक्षा में प्रयुक्त कर सकें। जब हम जानते है कि समझ(Understanding) का सबसे उत्तम माध्यम प्रथम भाषा ही होती है तब विद्यालय पर बहुभाषिकता के साथ अनुकूलन की अपेक्षा और अधिक बढ़ जाती है। बहुभाषिकता सिर्फ कई भाषा के बोलने वालों के समूह का लक्षण नहीं है बल्कि एक व्यक्ति भी बहुभाषी होता है। यह कोई आज का तथ्य नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य है। हम बहुत सी भाषाएं पूर्ण रुप से और आंशिक रूप से प्रयोग करते हैं। जैसा कि उदाहरण के लिए (1) हम घर की बोलचाल में और भावनाओं को व्यक्त करने में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं जोकि कुमाऊनी, गढवाली, नेपाली, भोजपुरी, बुंदेलखंडी आदि विभिन्न संदर्भों में अलग-अलग हो सकती हैं। (2) जबकि प्रशासनिक और वाणिज्यिक क्रियाकलापों में हम अपनी दूसरी भाषा का प्रयोग करते हैं वह अलग अलग राज्यों के लोगों के लिए अलग अलग होती है:– हिंदी भी हो सकती है, बंगाली भी हो सकती है। (3) हमारा जो व्यवहार क्षेत्र है वह सिर्फ दो भाषाओं के आधार पर ही पूर्ण नहीं हो रहा है इसके अलावा भी हम अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों के लिए, शिक्षा के लिए, शोध के क्षेत्र में अंग्रेजी का, जापानी का, चीनी भाषा का, फ्रांसीसी या जर्मनी भाषा का प्रयोग भी करते हैं। यह तो रही तीन

भाषाओं की आवश्यकता का एक उदाहरण लेकिन ये तीन भाषाएँ हमारे जीवन में भाषा की आवश्यकता को पूर्ण नहीं कर पा रही हैं। (4) हम विश्व के सभी धर्मों में देख सकते हैं कि धार्मिक साहित्य और संस्कृतिक साहित्य प्राचीन शास्त्रीय भाषाओं में ही प्राप्त है। बौद्ध धर्म के मानने वालों के लिए पाली और प्राकृत भाषाओं के ज्ञान की जरूरत होती है; इसाई लोग हेब्रू, ग्रीक, लेटिन भाषाओं पर आज भी निर्भर करते हैं; और हिंदू लोग अपने धर्मिक और सांस्कृतिक क्रियाकलापों के लिए संस्कृत भाषा, तमिल भाषा आदि पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हम किसी न किसी तरह से द्विभाषी ही नहीं अपितु बहुभाषी ही हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. बहुभाषिकता के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे;
2. बहुभाषिकता के विस्तार व प्रकृति का चित्रण कर सकेंगे;
3. बहुभाषिकता की एक संसाधन के रूप में व्याख्या कर सकेंगे;
4. कक्षा व विद्यालय में भाषाई विभिन्नता की स्थिति को समझ सकेंगे;
5. भाषाई पारिस्थितिकी के सम्प्रत्यय को समझते हुए अपने आस-पास उसका संरक्षण कर सकेंगे;
6. विद्यार्थियों की भाषाई पृष्ठभूमि को समझ सकेगें;
7. विद्यार्थियों की भाषाई पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए अपने शिक्षण की योजना बना सकेगें।

3.3 बहुभाषिकता की अवधारणा (Concept of Multilingualism)

इकाई के प्रारंभ में ही हमने भाषा के जटिल स्वरूप की चर्चा की है। क्योंकि एक जटिलतम सम्प्रत्यय बहुभाषिकता को समझने के लिए भाषा के इस जटिल पक्ष की ओर ध्यान आकर्षित करना जरूरी था। यहाँ जटिल का अर्थ कठिन य दुरूह ही सिर्फ नहीं समझना है। साधारण अर्थों में आप उलझा हुआ भी समझ सकते है पर यह याद रहे कि उलझा हुआ हमेशा बेतरतीब ही नहीं होता है। बहुभाषिकता के ताने-बाने की तुलना एक बहुरंगी व बहुतंतुनुमा (multicolored & multi- fabric) वस्त्र से की जा सकती है। एक मिश्रित रंगों व मिश्रित तंतुओं की बारीक बनावट जैसे जटिल वह उलझी हुई सी होती है वैसे ही बहुभाषिकता का परिदृश्य है। बहुभाषिकता हमारे देश का एक प्राचीनतम यथार्थ है। एक कहावत भी आपने सुनी ही होगी **"कोस कोस पर बदले पानी और चार कोस पर बानी"** कहने का भाव यह है कि हमारे देश में प्रत्येक 1 कोस (लगभग 3 किमी) पर पानी बदल जाता है और प्रत्येक चार कोस पर बानी या बोली बदल जाती है। बचपन में मैंने यह कहावत जब सुनी थी तब मेरा बाल-मन इस कहावत का मन ही मन विरोध कर बैठा था। इसका कारण सीधा सा था कि मेरे गांव से मात्र एक किलोमीटर की दूरी पर छोटे से गांव में बोली जाने वाली बोली और मेरे गांव की बोली में काफी अंतर था। शिक्षा व्यवस्था द्वारा मानक खड़ीबोली-हिंदी को बढ़ावा देने के बावजूद आज लगभग दो दशकों के बाद भी

दोनों गांव की बोली में अंतर देखा जा सकता है। इस उदाहरण का निहितार्थ पुरानी कहावत को अस्वीकार करना नहीं है अपितु बहुभाषिकता की व्यापकता को सामने लाने की एक कोशिश मात्र है। हम शिक्षकों को ऐसे बहुभाषी समुदाय की सेवा करनी होती है और जब हम विद्यालय द्वारा निर्धारित भाषा का ही प्रयोग करते हैं तो कहीं ना कहीं भाषाई अल्पसंख्यक लोगों के प्रति अन्याय हो ही जाता हैं। यह दोनों गांवों, जिनका उदाहरण यहाँ दिया गया है, के लिए आज भी एक ही विद्यालय है और उस समय भी इसी विद्यालय में सभी बच्चे पढ़ने जाते थे। जब कभी वह बच्चे अपने गांव की बोली में जवाब देते थे तो शिक्षक उनको डांटते भी थे और अन्य छात्र उनके विशेष तरीके से बात करने पर हंसते भी थे जबकि शब्दों का अंतर नहीं था सिर्फ शब्द-स्वरूप, और लहजे (Tone) का अंतर था। एक लम्बे समय तक उस गाँव की शिक्षा का स्तर संतोषजनक नहीं रहा है। जिसके अनेक कारणों में से भाषा-भेद, और भाषा के आधार पर भेद-भाव व पूर्वाग्रह रहे है। लेकिन आज हम सभी भाषाओं और बोलियों के प्रति सहिष्णु होने लगे है।

उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश को खासतौर पर हिंदी भाषी राज्य माना जाता है। हिंदी भाषी राज्यों में भी विशुद्ध हिंदी भाषी कहा जाता है। यह सत्य अन्य राज्यों, विशेष रूप से दक्षिण भारतीय व उत्तर पूर्वी राज्यों के लोगों, का सत्य कहा जा सकता है। बाहर से ऐसा ही दिखाई देता है। हम भी तो मिज़ो, नागा, त्रिपुरी, मणिपुरी आदि व्यक्तियों में ही अंतर नहीं कर पाते है, तो भाषा तो बहुत दूर की बात है। लेकिन उत्तराखंड के वासी होने के नाते आप यहाँ की भाषा तथा भाषाई पारिस्थितिकी (Language Ecology) को अच्छे से समझ सकते हैं। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि गढ़वाली और कुमाऊंनी को मिलाकर उत्तराखंड में लगभग 15 भाषाएं (Dialects) प्रयोग की जाती है (Dialects of Uttarakhand, n.d.)। जबकि प्रशासकीय भाषा का दर्जा हिंदी व संस्कृत को प्राप्त है। यही स्थिति उत्तर प्रदेश की भी है। प्रशासकीय भाषा (official Language) का दर्जा उर्दू व हिंदी को प्राप्त है जबकि बहुत बड़े पूर्वी भाग पर भोजपुरी का बोलबाला है। जो भारत में हिंदी का हिस्सा मानी जाती है परंतु सिर्फ मानक हिंदी को सुनने की आदत वाले कानों के लिए लगभग समझ के बाहर की बात है। भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी, ब्रज, सभी को हिंदी की उपभाषाओं के रूप में मान्यता प्राप्त है। यदि भाषाओं के आधार पर राज्यों के गठन की स्थापना जारी रही तो भविष्य में ये भाषायी क्षेत्र अलग राज्य भी हो सकते है। सीतापुर, कानपुर, लखनऊ, कन्नौज आदि अनेक जिलों की भाषा के आधार पर कोई अलग पहचान नहीं है फिर बहुभाषिकता के लक्षण विद्यमान है। एक उदाहरण से हम समझने की कोशिश करते है जो कि एक सत्य घटना पर आधारित है। सन् 2015 में कानपुर जिले के रहने वाले एक शिक्षक सीतापुर जिले के प्राथमिक विद्यालय में नियुक्ति प्राप्त करते हैं। एक दिन शिक्षक ने विद्यार्थी से पूछा कि तुम्हारी पुस्तक कहाँ है? विद्यार्थी ने उत्तर दिया *'बह गयी'*। शिक्षक ने आश्चर्यचकित होकर पूछा कि क्या तुम्हारे गांव में बारिश के समय पर बाढ़ आई थी? शिक्षक ने यह प्रश्न बड़ा उत्सुक होकर किया और उस पर कुछ बच्चे हंसने भी लगे क्योंकि उस गांव में बाढ़ की कोई संभावना नहीं थी। बात इतनी सी है कि उस क्षेत्र में *'बहने'* का अर्थ *'खोने'* से होता है। बच्चे का जवाब था कि पुस्तक खो गई है। जो कि थोड़ी दूरी पर बैठे स्थानीय शिक्षक ने संवाद को बीच में रोकते हुए बताया था। कहने का तात्पर्य है कि एक ही भाषा क्षेत्र में सिर्फ बोलने की शैली व लहजे

का ही अंतर नहीं है बल्कि शब्दों के अर्थ भी अलग-अलग हैं। इसे अंतःभाषाई(intra-lingual) विभिन्नता कहते हैं। अतः हम देख सकते हैं की अंतर-भाषाई (Inter-lingual) विभिन्नता के साथ-साथ अंतःभाषाई विभिन्नता भी व्याप्त है। यह एक सूक्ष्मतर स्तर का अंतर है, जो कि शिक्षक से संवेदनशीलता की मांग करता है। यहाँ शिक्षकों से विद्यार्थियों की सभी विभिन्न भाषाओं को सीखने की अपेक्षा नहीं रखी जा रही है पर शिक्षक सभी भाषाओं को उचित महत्त्व देते हुए बहुभाषिकता के लिए एक सही माहौल बना ही सकते है। विद्यालय में शैक्षिक अंतर्क्रिया के लिए हम सिर्फ एक भाषा के ऊपर निर्भर नहीं रह सकते है। नवीनतम विचारधारा के अनुसार शिक्षकों के प्रश्न की भाषा और विद्यार्थियों के उत्तर की भाषा में भी अन्तर हो सकता है। इस भाषा परिवर्तन के उपागम य पद्धति को पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र (Translanguaging Pedagogy) की उपाधि दी गई है। यह एक नया तरीका है जिसमें शिक्षक विद्यार्थी को वह भाषा प्रयोग करने देता है जिसे वह सबसे अधिक और अच्छे से जानता है। कोई एकभाषी शिक्षक भी पराभाषिक प्रणाली का अनुगमन कर सकता है (Grosjean, 2016). यह विचाधारा कक्षा शिक्षण में भाषा उदारता और किसी एक माध्यम-भाषा पर निर्भरता से मुक्ति में विश्वास करती है।

हम शिक्षक सांस्कृतिक संरक्षण की बात तो करते है पर भाषाई संरक्षण पर तनिक भी ध्यान नहीं रखते। इसके विपरीत देखने को मिलता है कि कुछ तथाकथित अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में विद्यार्थियों द्वारा मातृभाषा के प्रयोग किए जाने पर अर्थदण्ड भी दिया जाता है। कही न कही यह बच्चों के प्रति, उनकी मातृभाषाओं के प्रति समाज के प्रति एक अपराध ही कहा जायेगा। यदि कोई शिक्षक थोड़ा भी चिंतनशील प्राणी है तो वह जान सकता है कि सांस्कृतिक संरक्षण भाषायी संरक्षण से ही प्रारम्भ होता है। जब हमारा देश बहुसांस्कृतिक देश है तब भाषाई विभिन्नता तो होगी ही। किसी एक के होने से दूसरा स्वाभाविक है। द्विभाषिकता और बहुभाषिकता अपने आप में बहुसांस्कृतिकता को आलिप्त करती है अर्थात बहुभाषावाद में बहुसंस्कृतिवाद निहित है। पुनः आप यह बात चक्रीय सम्बंध द्वारा समझ सकते हैं (चित्र 1) कि एक संस्कृति किसी भाषा को जन्म देती है, पल्लवित करती है और प्रतिफल स्वरूप वही भाषा संस्कृति को पहचान देती है, संवर्धन और उसका वर्धन करती है। अतः भाषा और संस्कृति एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित है। और यह चक्र सततरूप से गतिशील रहता है।

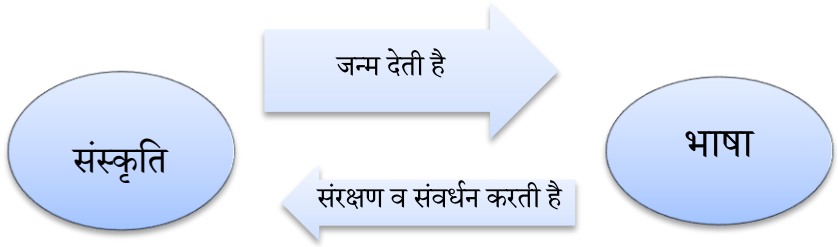

चित्र 4: भाषा और संस्कृति की अन्योन्याश्रिता

इस प्रकार यदि हम बहुभाषावाद की बात करते हैं तो बहुसंस्कृतिवाद से हम अलग नहीं हो सकते हैं। किसी भी संस्कृति को समझने के लिए उस संस्कृति विशेष की भाषा को समझना ही पड़ेगा क्योंकि भाषा किसी भी संस्कृति का एक विशेष और अनिवार्य अंग है। बच्चे बहुत सी अलग अलग तरह की भाषाओं के साथ विद्यालय में आते हैं और उनकी इन भाषाओं से जुड़ी अलग-अलग संस्कृतियां भी होती है। और हम यह भी जानते है कि बच्चा (व्यक्ति) अपनी संस्कृति विशेष का ही उत्पाद होता है। उसको समझने के लिए उसकी संस्कृति को समझना अनिवार्य है और संस्कृति समझने की प्रथम शर्त भाषा को समझना है। इसको समझने की विधियों की चर्चा हम इस इकाई के अंतिम भाग में करेंगे। अभी हम भाषाई विभिन्नता की मौजूदगी पर चर्चा करते है।

3.4 कक्षा-कक्ष में भाषायी विभिन्नता (Language Diversity in the Classroom)

भाषायी और सांस्कृतिक विभिन्नता हमारे देश की विशिष्ट पहिचान और शक्ति है। किसी समाज में भाषायी विभिन्नता होने पर ही उस समाज को बहुभाषिक समाज कहा जाता है। अतः बहुभाषिकता और भाषाई विभिन्नता दोनो सम्प्रत्यय एक ही वस्तुस्थिति को चित्रित करते है। जैसा की आप जानते है कि विद्यालय समाज का ही लघुरूप होता है अतेव बहुभाषिक समाज में विद्यालयों में आने वाले बच्चों की भाषाएँ भी विभिन्न ही होंगी। यह सिर्फ बड़े-बड़े शहरों की स्थिति ही नहीं है अपितु छोटे-छोटे से गांवों में विभिन्न पृष्ठभूमि के बच्चे स्कूल में पहुंचते हैं लेकिन आश्चर्यजनक और दुःखद स्थिति है कि शिक्षक भाषाई विविधता के लिए एकदम तैयार नहीं होते हैं (Edward, 2010)। जबकि एडवर्ड के अनुसार सभी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा जो गुणात्मक शिक्षा य अच्छी शिक्षा कहलाने के योग्य है वह बहु-सांस्कृतिक ही होती है। इस बात को समझने के लिए आप अपने पूर्व-अनुभवों का प्रयोग कर सकते है। आप अपने समुदाय विशेष (गाँव/शहर) की भाषा को समाज के अंदर रहते हुए आत्मसात कर ही लेते हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है विद्यालय में जाने की क्या आवश्यकता है? ऐसा सोचने और ऐसा करने से आपकी गतिविधियों का क्षेत्र काफी सीमित हो जाता है। हम एक स्थान पर रहकर जीवन पार करने वाले और उसी वातवरण के अनुभव रखने वाले लोगों को नकारात्मक शब्दों में 'कूप-मंडूक' भी कहते रहे है। अर्थात अंतर-सांस्कृतिक समझ कहीं ना कहीं ज्ञान का प्रतीक है व ज्ञान से संबंधित है। आज से एक य दो दशक पीछे के समाज पर अगर ध्यान दें तो जनसंचार के माध्यम का इस स्तर तक विकास नहीं हुआ था। समाज में विशेष रूप से ग्रामीण समाज में जो दो चार तरह के लोग ज्ञानी होते थे या माने जाते थे उनमें से हम कह सकते हैं कि शिक्षक हुआ करते थे। शिक्षकों के अलावा साधुसंत, व्यापारी और रोजगार के लिए दूसरे प्रदेशों में काम करने वाले श्रमिक हुआ करते थे। यह सभी व्यक्ति गतिशील थे और अंतर्सांस्कृतिक व अंतर्देशीय समझ रखते थे। हमारे देश की सबसे अधिक भाग में बोली और समझी जाने वाली आधुनिक हिंदी भाषा के विकास में साधुसंतों और व्यापारियों का विशेष योगदान रहा है। अंग्रेजी के विकास में भी व्यापारियों व ईसाई मिशनरियों का ऐतिहासिक योगदान है। अतः सारांश यह है कि भाषा के विकास में, सांस्कृतिक-

आर्थिक समृद्धि में और राजनैतिक समझ में अंतर-भाषाई और अंतर-सांस्कृतिक अनुभवों का विशेष योगदान है। इस समझ का विकास करना शिक्षा का एक उद्देश्य भी है। ज्ञान(शिक्षा) का एक रूप अंतर्सांस्कृतिक समझ है। शायद इस तथ्य को जानने पर हमने ज्ञान की सर्वोच्च पीठ को विश्वविद्यालय कहा होगा। जहाँ समस्त विश्व का ज्ञान (संस्कृति, भाषा, विज्ञान) अध्ययन के लिए उपलब्ध हो। संस्कृतिक (भाषाई सहित) विभिन्नता एक प्रकार से शिक्षा का आधार और पाठ्यवस्तु भी है। अतः हम शिक्षकों का दृष्टिकोण समेकित होना चहिए। किसी एक भाषा और संस्कृति के प्रति विशिष्ट लगाव और किसी दुसरे के प्रति पूर्वाग्रह य दुराव कही न कही शिक्षा की मूल अवधारणा के विरुद्ध ही प्रतीत होता है।

उपरोक्त चर्चा से अभी तक दो बातें स्पष्ट हो चुकी हैं कि भाषाई विभिन्नता एक सार्वभौमिक सत्य है और एक से अधिक भाषाओं का ज्ञान रखना एक शक्ति व योग्यता के अंतर्गत आता है। कुछ विद्वानों का मत है कि जो शिक्षक अपने विद्यार्थियों के द्वारा विभिन्न भाषाओं के प्रयोग के विषय में उदार, खुले दिमाग के और पूर्वाग्रह से रहित होते हैं वे विद्यार्थीयों में भाषाई रुचि और विकास के संवर्धन में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं (Lars and Trudgill, 1990)। अर्थात भाषाई विभिन्नता के प्रति संवेदनशील शिक्षक अपने विषयों में सामान्य रुप से सभी क्षमताओं को विकसित करने में सफल होने की अधिक संभावना रखते हैं। शिक्षकों में इस तरह की अभिवृत्ति का विकास तभी होता है जब वे अपने विद्यालय क्षेत्र की **भाषाई परिस्थितिकी** से भलीभाँति परिचित हो। अब भाषाई परिस्थितिकी से क्या तात्पर्य है? आइये इस अवधारणा पर भी चर्चा कर लेते है।

3.5 भाषाई पारिस्थितिकी (Language Ecology)

भाषाई परिस्थितिकी एक ऐसा विषय है जो भाषाओं, लोगों, और पर्यावरण(विश्व) के आपसी संबंधों का अध्ययन करता है (Dua, 2008)। एक पारिस्थितिक तंत्र में शामिल भाषाएं सह-अस्तित्व रखती हैं। कई भाषाएं साथ-साथ उद्भूत और विकसित होती हैं, एक दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। भाषाओं का आपसी संबंध शक्ति, दबाव, आकर्षण, प्रभुत्व व आदान-प्रदान आदि लक्षणों द्वारा चिन्हित होता है। सह अस्तित्व और सह-उद्भव का सबसे अच्छा उदाहरण हिंदी खड़ी बोली और उर्दू भाषा के विकास का है। दोनों के विकास के इतिहास पर यदि आप नजर डालेंगे तो आप समझ सकते हैं कि भाषा की परिस्थितिकी तंत्र में राजनीतिक तंत्र की बहुत बड़ी भूमिका होती है। आप यह भी समझ सकते है कि राजनीतिक और सामाजिक तंत्र में किसी भी प्रकार के बदलाव से भाषाई परिस्थितिकी में भाषाओं का स्थान किस प्रकार अदल-बदल होता रहता है। आप भारत में अंग्रेजी के आगमन, प्रसार व वर्चस्व के सूक्ष्म अवलोकन से जान सकते हैं कि बाजार (आर्थिक ताकतों) का तथा राजनीतिक सत्ता का भाषा-नीति और प्रयोग पर क्या प्रभाव पड़ता है। हिंदी के विकास में भी भारतीय व्यापारियों का विशेष योगदान माना जाता है। भाषा की स्थिति के संदर्भ में हम राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक कारकों की अक्सर बात करते हैं। लेकिन एक और सशक्त कारक व क्षेत्र है जिसे धर्म कहते हैं। जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे धर्म और भाषा का भी अनुबंधन हो ही जाता है। सबसे बड़ा उदाहरण धर्म के आधार पर बना मुस्लिम देश पाकिस्तान है जो

अपनी भौगोलिक क्षेत्र में व्याप्त भाषाओं को छोड़ते हुए भारतीय भूभाग पर जन्मी और विकसित हुई उर्दू भाषा को अपनी राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार करता है। जहाँ सिर्फ 8% आबादी उर्दू भाषा का प्रयोग करती है (BBC, 2015); लेकिन उर्दू का सम्बंध स्लाम से जुड़ने से वह पकिस्तान की एकलौती प्रशासनिक भाषा का दर्जा प्राप्त कर लेती है। भारत में ईसाई बहुल क्षेत्रों में कुछ हद तक अंग्रेजी का स्तर तुलनात्मक रूप से बेहतर देखा जा सकता है, क्योंकि अंग्रेजी और इसाईयत अनौपचारिक रूप से जुड़ चुके है। यद्यपि अंग्रेजी की भारत में राजनीतिक और शैक्षिक पहचान अधिक है। संस्कृत भाषा का भी सनातन धर्म (हिंदू धर्म) से अटूट संबंध रहा है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भाषा समाज में सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक व धार्मिक व्यवस्थाओं से जटिल रूप से आबद्ध रहती है। किसी एक व्यवस्था में परिवर्तन सामाजिक परिस्थितिकी में भाषा/भाषाओं की स्थिति को प्रभावित करती है; और भाषाई परिस्थितिकी में परिवर्तन लाती है। परिणामतः भाषाई स्वरूप, लिपि, प्रतीक, चिन्ह, संरचना आदि में परिवर्तन का कारण बनती है। राजनीतिक संगठन और राज्य की कार्यप्रणाली भाषाई परिस्थितिकी के स्वरूप, परिवर्तन, संरक्षण, और विकास में अग्रणी भूमिका अदा करती है। राज्य द्वारा भाषानीति, भाषा-शिक्षा, साक्षरता, शिक्षाण-माध्यम आदि का चयन विभिन्न भाषाओं के आपसी संबंधों का निर्धारण करता है साथ ही भाषा तंत्र में भाषा के स्थान को प्रभावित व सुनिश्चित करता है। स्थानीय परिस्थितिकी में हम शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसकी सूक्ष्म समझ से हम अपनी भूमिका सकारात्मक रूप से अदा कर सकते है। जिससे की भाषाओं का संरक्षण ही नहीं वरन भाषाई विभिन्नता(बहुभाषिकता) से हम संसाधन के रूप में लाभ प्राप्त कर सकें।

अभ्यास प्रश्न

1. समाभाषिक दृष्टिकोण से भाषा की अवधारणा क्या है?
2. भारत में लगभग कितनी भाषाएँ य बोलियां प्रयोग की जाती है?
3. समझ का सबसे अच्छा माध्यम कौन सी भाषा होती है?
4. उत्तर प्रदेश की प्राशासनिक भाषाएँ कौन सी है?
5. पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र (Trans-languaging Pedagogy) किसे कहते है?

3.6 बहुभाषिकता एक संसाधन के रूप में (Multilingualism as a Resource)

बहुभाषिकता एक शाश्वत सत्य है। शिक्षकों को बहुभाषिकता के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। यह लगभग प्रत्येक देश व समाज का सामान्य सत्य है। परंतु इस प्राकृतिक-सामाजिक विशेषता को अज्ञानतावश हमेशा से दबाने या नष्ट करने की कोशिश की जाती रही है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण सन् 1971 से पहले पाकिस्तान द्वारा बंगलादेश (तत्कालीन पूर्वी-पकिस्तान) में बंगाली भाषा पर प्रहार है, और

दूसरा उदाहरण तुलसीदास जी द्वारा रामचरित मानस को लोकभाषा अवधी में लिखने पर तत्कालीन काशी के पण्डितों का विरोध, जिससे कि उनको काशी छोड़कर अन्यत्र जाना पड़ा था। कई प्रकार की शक्तियाँ इस नृशंसता में शामिल रही है। आज हमारे देश में बहुभाषिकता को संवैधानिक रूप से स्वीकार किया गया है, फिर भी यथार्थ के धरातल पर इसके पुष्पन के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं बन पाया है। कहीं ना कहीं एक भाषा विशेष से हमारा लगाव होना इसका प्रमुख कारण रहा है। स्वतंत्रता के बाद भी हम कहीं हिंदी का और कहीं अंग्रेजी का विरोध देख सकते हैं। मातृभाषा य राष्ट्रभाषा के प्रति प्रेम होना उसके प्रति सम्मान होना कोई गलत बात नहीं है। बल्कि यह कई मायनों में लाभकारी लक्षण है। मातृभाषा य राष्ट्रभाषा से प्रेम किसी दूसरी भाषा य विदेशी भाषा के प्रति घृणा का कारण नहीं होना चाहिए। भाषाएँ नदियों के समान है जो आसपास की जमीन को आर्दता प्रदान करती हैं, और हरियाली लाती हैं। यह वह जमीन है जहाँ हम विचारों की खेती करते हैं। आज भाषा-विज्ञानियों, राजनीति-सिद्धांतशास्त्रियों, समा-भाषाशास्त्रियों, भाषा-नीति निर्माताओं आदि सभी ने बहुभाषिकता को संसाधन माना माना है। अब हम बिंदुवार ढँग से बहुभाषिकता के लाभों पर चर्चा करते है।

- यह आप पिछली इकाई में भी पढ़ चुके है कि कोई भाषा चिंतन की प्रक्रिया में बाधक नहीं बल्कि उसकी वाहक होती है। जितनी अधिक भाषाओं का ज्ञान आपको होता है आप उतने अधिक तरीके से किसी बिंदु, विषय, घटना के बारे में सोच सकते हैं और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकते है(NCERT, 2005)।
- सामाजिक दृष्टि से भी बहुभषिकता विकास के लिए सकारात्मक आधार उपलब्ध कराती है। हम पहले भी चर्चा कर चुके है कि बहुभाषिकता सतही स्तर पर सरल और आंतरिक जटिलता लिए हुए एक विशेष सांस्कृतिक स्थिति होती हैं। यह एक ऐसी जटिल स्थिति है जहाँ दो या दो से अधिक भाषाओं की अंतर्क्रिया भाषाई, साहित्यिक, सांस्कृतिक विकास और ज्ञान की रचना को प्रभावित और पुष्ट करती हैं।
- बहुभाषिकता की स्थिति भाषा के विकास, सामाजिक-सांस्कृतिक वृद्धि, सामाजिक-राजनीतिक गतिशीलता में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इसका अल्पसंख्यक भाषाओं के संरक्षण और प्रयोग पर विशेष ध्यान रहता है जिससे कि सामाजिक भाषाई संसाधनों को बनाए रखा जा सके और उनका दोहन किया जा सके।
- बहुभाषिक-वैचारिकी एक तरह से सामाजिक-सांस्कृतिक संरक्षक का कार्य करती है। इस विचाधारा से समाज में कई भाषाएँ साथ साथ विद्यमान रहती है। इस तथ्य का विशद समा-भाषिक महत्व है। यह भाषाओं को विलुप्त होने से बचाता है। कोई भाषा का विलुप्त होना एक साधारण नुकसान नहीं होता है। भाषा के साथ साथ संस्कृति का नुकसान होता है। लुप्तप्राय भाषा के बोलने वाले लोग (भाषायी अल्पसंख्यक) एक नई भाषा सीख सकते है, जो कि अक्सर बहुसंख्यक भाषा होती है। लेकिन कुछ बातों की भरपाई कभी नहीं हो सकती। जैसे हर भाषा में

कुछ शब्द होते है जो स्थानीय वस्तुओं, रिश्तों, प्राकृतिक-जीव- जंतुओं-घटनाओं का बोध कराते है उन सबका नुकसान होता है। आप विचार कर सकते है कि अंग्रेजी भाषा, जिसे आज की स्थिति में विदेशी भाषा नहीं कहा जा सकता है, में बुआ, मौसी, मामी, चाची आदी रिश्तों के लिए अलग अलग शब्द नहीं है फलस्वरूप अंग्रेजी संस्कृति में इन रिश्तों का विशेष महत्त्व भी नहीं ।

- हमने पिछली इकाई में पढ़ा था कि हम एक भाषाई समुदाय के सदस्य होने के नाते एक विशेष प्रकार से सोच रखने लगते हैं(Borodotsky, 2001)। बोरोदोत्स्की के शोधों से पता चला है एक भाषा विशेष हमारे संज्ञानात्मक प्रक्रिया का हिस्सा होती है और हमे विशेष क्षमताएँ प्रदान करती है। उन्होने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि अंग्रेजी भाषा में गहरे नीले और हल्के नीले रंगो को डार्क ब्लू और लाइट ब्लू (Dark Blue & Light Blue) कहकर काम चलाया जाता है जबकी रूसी भाषा में इसके लिए अलग अलग शब्द होते है। रूसी लोग गहरे नीले रंग को 'सिनी' (Siniy) कहते है और हलके नीले रंग को गोलूबाय (Goluboy) कहते है। इस साधारण सें शब्दों के अंतर का बहुत बड़ा अंतर उनके प्रत्यक्षण और समझ पर पड़ता है। उन्होंने ने पाया कि विभिन्न प्रकार के नीले रंगो को दिखाने से रूसी लोग जल्दी से अंतर कर पाते है। ऐसे ही एक शोध में पाया गया कि उत्तरी आस्ट्रेलिया की एक जनजातीय(Kuuk Thaayorre) के लोगो में हम लोगो से अच्छा दिशा बोध होता है। क्योकि उनकी भाषा में दाँया- बाँया शब्द नहीं होता है वे हमेशा मुख्य-दिशाओं के संदर्भ में ही बात करते है जैसे(उदाहरणार्थ) यदि उनको बताना होगा कि आपके दहिने हाथ कि बटन(Cuff-Button) खुली है तो वे उस समय आपकी खड़े होने की स्थिति को समझ कर बोलेगें कि आपके उत्तरी-पूर्व हाथ की बटन खुली है(Borodotsky, 2009)। कहने का तत्पर्य विभिन्न भाषाओं से के साथ विभिन्न संज्ञानात्मक और संकृतिक उपलब्धियाँ जुड़ी हुई है। किसी भाषा को बोलने वाले जब उस भाषा का प्रयोग करना छोड़ देते है या ख़त्म हो जाते है(भाषा परिवर्तन आदि कारणों से) तो वह भाषा मृत-भाषा की कोटि में आती है। किसी भी भाषा के मृत होने से उस भाषा से जुड़ा विशेष ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। एक जगरूक ज्ञान समाज में शिक्षक की भूमिका यही है कि वह सभी भाषाओं व बोलियों के प्रति उदार रहे जिससे कि भाषाई परिस्थितिकी में संतुलन बना रहे और बच्चों को मातृभाषा में सीखने के अवसर भी मिलते रहे।
- भाषा एक उन्नत व जटिल संज्ञानात्मक व्यवस्था भी है, जो (व्यक्ति की क्षमता के आधार पर) संज्ञान के लिए सशक्त उत्प्रेरक और परावर्तक मानी जाती है (Bowerman & Levinson, 2001)। बहुभाषिकता हमारे मस्तिष्क को एक विशेष प्रकार के लोचनीयता प्रदान करती है।
- शोध योजना कोई भी रही हो पर सभी तरह के शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि विशेष सामाजिक-भाषायी परिस्थितियों में द्विभाषिकता का संज्ञानात्मक प्रभाव सकारात्मक होता है। यदि धनात्मक द्विभाषिकत है तो बच्चे निश्चित रूप से संज्ञानात्मक लाभ प्राप्त करते है

(Cummins,1981)। द्विभाषी बच्चे कई संज्ञानात्मक क्षमताओं के आधार पर लाभ की स्थिति में होते हैं। उदाहरणार्थ प्याजे के संरक्षण-कार्य (Piagetian conservation task), संप्रत्यय निर्माण, सृजनात्मकता, सादृश्य तर्कना, वर्गीकरण कौशल, तार्किक क्षमता, उच्च-संज्ञानात्मक क्षमताएं आदि में द्विभाषी बच्चे अधिक सक्षम होते हैं।

- भाषा अर्जन में भी द्विभाषिक या बहुभाषिक जागरूकता आनुषंगिक होती है। दो भाषाओं का ज्ञान रखने वाला तीसरी भाषा को तुलनात्मक रूप से जल्दी सीखने के साथ साथ उसमें कार्यात्मक दक्षता हासिल कर सकता है।
- बहुभाषी बच्चों में एक परिष्कृत भाषा जागरूकता होती है और वे अपने भाषा व्यवहार पर विशेष नियंत्रण रखते हैं। जो बदले में उनको न केवल द्वितीय भाषा में निपुणता हासिल करने में सहायक होता है बल्कि उनके संज्ञानात्मक व मानसिक विकास में एक महत्वपूर्ण क्रियात्मक भूमिका अदा करता है।
- वायगोत्स्की ने भी अपने भाषा विकास सिद्धान्त में बहुभाषिक क्षमताओं पर विशेष जोर दिया वायगोत्स्की के अनुसार व्यक्तिगत भाषा में भाषा के प्रयोग के द्वारा समझने की प्रक्रिया को विनियमित करने और विचार के उपकरण के रूप में भाषा पर कार्यकारी नियंत्रण बढ़ना बच्चों की बुद्धि के विकास के लिए लाभकारी होता है। और बहुभाषिकता की स्थिति भाषा-प्राक्रमण(Language Processing) और भाषा नियंत्रण को गति प्रदान करती है।
- Bialystock (1991) के अनुसार भाषा निपुणता उम्र, अनुभव और अनुदेशन से बढ़ती है। उन्होंने भाषा प्रयोग के तीन ज्ञानक्षेत्र बताये है –भाषा का मौखिक प्रयोग, साक्षरता व बहुभाषिक कार्य (Spoken, Literacy/Written & Multilingual Tasks)। उनके अनुसार भाषा-प्रसंस्करण (Language Processing) के दो तत्व हैं – विश्लेषण और नियंत्रण। भाषा प्रसंस्करण के विकास का जो क्रम होता है वह द्वि/बहुभाषी बच्चों में अनिवार्य रूप से एकभाषी बच्चों से अलग होता है। दो भाषाओं में निपुणता का विकास इन्ही *विश्लेषण और नियंत्रण* क्षमताओं के उच्चतर शिखरों की ओर बढ़ना होता है। द्विभाषी बच्चों के पास दोनों प्रक्रियाओं में तेजी से निपुणता हासिल करने का अवसर रहता है। यही दोनों प्रक्रियाएँ विभिन्न क्षेत्रों (मौखिक, साक्षरता, और बहुभाषिकता) में भाषा प्रयोग के आधार के रूप में होती हैं। शिक्षकों को बच्चों में भाषा-प्रक्रमण के इन तत्वों के विकास के चिन्हों व लक्षणों को पहिचानना होता है। क्योंकि इन्ही के आधार पर शिक्षण-विधि और संप्रेषण रणनीति का निर्णय किया जा सकता है।
- द्विभाषी बच्चे शब्दावली पर नियंत्रण में आंतरिक सुविधा का लाभ प्राप्त करते हैं।
- अनुवाद या अनुकृति एक बहुभाषिक कौशल है। बहुभाषी बच्चे प्रारंभिक अवस्था से ही स्वाभाविक अनुकृति में निपुणता प्राप्त कर लेते हैं।

- भाषा और संज्ञान दोनों ही बड़ी पेचीदगी से सांस्कृतिक व्यवस्था के अभिन्न अंग है। इनकी समझ ही शिक्षकों में एक विशेष शिक्षण-शास्त्रीय (Pedagogical) समझ विकसित करती है। शिक्षकों में बहुभाषिकता का लक्षण य बहुभाषिक संवेदनशीलता उनके शिक्षण शैली और संप्रेषण कौशल को गतिशीलता प्रदान करती है।
- बहुभाषिकता शब्दों के लाक्षणिक और व्यंजनात्मक अर्थो को व्यक्त करने के कौशल में वृद्धि करती है।
- दो य दो अधिक भाषाएँ सामाजिक वयैक्तिक स्तर पर एक दूसरे के पूरक के रूप में कार्य करती है। द्विभाषी बच्चे सामाजिक अंतःक्रिया में भाषा कूट परिवर्तन (Code Switching) के माध्यम से अधिक सफलता प्राप्त करते है।
- हम अंतर और समानता खोज कर भी सीखते है। द्विभाषी बच्चे दो भाषाओं के शब्दों के अंतर और विश्लेषण के द्वारा किसी वस्तु य सम्प्रत्यय कों स्थायी रूप से आत्मसात कर लेते है।

3.7 विद्यार्थियों की भाषाई पृष्ठभूमि (Language Backgrounds of the Students)

अभी तक की चर्चा से हमने यह जाना की बहुभाषिकता एक सामान्य सत्य है। यह कोई समस्या नहीं जैसा की कई शिक्षक सोचते है बल्कि यह एक संसाधन है। आप जनते है कि शिक्षक का कार्य नैसर्गिक भाषाई-परिस्थितिकी को संरक्षित करना है व पोषित करना है ना कि उसको नष्ट करना। इस हेतु शिक्षकों को विभिन्न भाषाओं के प्रति सम, संवेदनशील व ग्रहणशील होना चाहिए। पुनः हम ध्यान दे कि हमारे विद्यालय में विभिन्न भाषायी और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से विद्यार्थी आते हैं। और जैसा कि हम जानते हैं कि बच्चों की भाषा और संस्कृति को समझे बिना हम उनके लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते है क्योकि उनकी परिस्थिति में वह शिक्षा प्रासंगिक नहीं हो सकती है। कई कारणों में शिक्षा की अप्रासंगिकता भी एक कारण है कि प्रारम्भिक शिक्षा का मुफ्त व अनिवार्य होते हुए भी कई अभिवावक अपने बच्चों को विद्यालय नहीं भेजते। जैसा कि हम शिक्षक जमीनी स्तर पर कार्य करते है यह हमारी जिम्मेदारी बनती है कि हम विद्यालय द्वारा प्रदत्त शिक्षा की सार्थकता बनाये रखे। और यह तभी सम्भव है जब हम अपने विद्यार्थियों की भाषायी और संस्कृतिक पृष्ठभूमि से अच्छी तरह से वाकिफ हो। हम पिछली इकाइयों में चर्चा कर चुके है कि भाषा शिक्षा का माध्यम व शिक्षा का अंग है; और बच्चों की प्रथम भाषा उनकी समझ के लिए सबसे उत्तम माध्यम है तो कहीं न कहीं यह बात तार्किक है कि शिक्षकों को बच्चों के भाषाई पृष्ठभूमि य प्रथम भाषा को समझना जरूरी है। दूसरी एक बात और महत्वपूर्ण है कि सिर्फ हम उदारता और दया भाव से बच्चों की मातृभाषा मे कक्षाकक्ष-अंतर्क्रिया को बढ़ावा दे तो ऐसा सोचना मात्र ही गलत है। यदि आप शिक्षा में समता की बात करते हैं। यदि आप एक समेकित शिक्षा व्यवस्था में विश्वास करते हैं तो सबको समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिए हमको उनकी भाषाई

अधिकारों का ध्यान रखना ही पड़ेगा। कक्षा में भाषाई विभिन्नता को ध्यान रखने फायदा सिर्फ विद्यार्थियों को ही नहीं होता है बल्कि हम शिक्षकों को भी होता है। शिक्षक अपने बच्चों के पृष्ठभूमि के बारे में जितना अधिक जानते हैं उतना उनका काम आसान हो जाता है। कई दशकों से होते आ रहे शैक्षिक शोधों से यह बात स्वयं सिद्ध सी हो चुकी है कि बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि पर उनकी भाषाई, सांस्कृतिक, पारिवारिक पृष्ठभूमि का असर पढ़ता है। तब हम बच्चों की पृष्ठभूमि के विषय में गम्भीरता से अध्ययन क्यों नहीं करते?

आपने शिक्षा-साहित्य में पढ़ा होगा कि उत्तम शिक्षक वह होता है जो बच्चों को अभिप्रेरित करता है। आपने अभिप्रेणा और अधिगम के अन्योन्याश्रितता का भी अध्ययन किया ही होगा। जब हम जानते हैं कि अभिप्रेरणा के बिना अधिगम संभव नहीं है तो शिक्षक का मुख्य कार्य विद्यार्थियों को प्रेरित करना हो जाता है। अपने विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए और अपने विषय को रूचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने के लिए आपको पता होना चाहिए कि वे कौन सी बातें है जो विद्यार्थियों को प्रेरित करती है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए आपको इसके आधार प्रश्न का उत्तर भी खोजना होगा। वह यह कि विद्यार्थियों के विद्यालय में आने को क्या और कौन सी बात प्रेरित करती है? इस प्रश्न के उत्तर से न केवल शिक्षकों का शिक्षण रुचिपूर्ण होता है अपितु विद्यालय द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा प्रासंगिक भी होती है। ऐसा इसलिए क्योंकि बच्चों के विद्यालय आने की अभिप्रेरणा में अभिभावकों द्वारा विद्यालय भेजने की अभिप्रेरणा व उनकी अपेक्षाएं भी संलिप्त रहती है। इनका ज्ञान शिक्षकों को होना अनिवार्य है। आप सोच रहे होंगे कि शिक्षक अभिभावकों की अपेक्षाओं की जानने के कार्य को कैसे कर सकते हैं? इसके लिए संवाद सबसे उचित माध्यम है। अभिभावकों से संवाद स्थापित करके आप न केवल उनकी अपेक्षाओं को जानने लगते हैं बल्कि आप अपने विद्यार्थियों के भाषाई पृष्ठभूमि भी समझ जाते हैं; जो कक्षाकक्ष अंतर्क्रिया को प्रभावी बनाने के लिए जरूरी है।

हमारे आसपास अप्रशिक्षित शिक्षकों की कमी नहीं है कई विद्यालयों में प्रथम डिग्री (B.A./B.Sc) प्राप्त लोग पढ़ा रहे हैं। जिन्होंने शिक्षा में कोई उपाधि (जैसे B.Ed.) प्राप्त नहीं की है। इस तत्व से एक बात सामने आती है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी कक्षा में कोई भी विषय पढ़ा सकता है। परन्तु शिक्षा का उद्देश्य पूरा होने की गारंटी तब होती है जब आप बच्चों के सर्वांगीण विकास को प्रोत्साहित करते हैं। यह तभी संभव है जब आप बच्चों की पृष्ठभूमि को समझते हो। विद्यार्थियों के पारिवारिक, सामाजिक-सांस्कृतिक मांनसिक आदि परिप्रेक्ष्यों को समझने की पहली शर्त विद्यार्थियों की भाषाई पृष्ठभूमि को समझना है। विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि की समझ ही आपको संपूर्ण(Complete) शिक्षक बनाती है। बच्चों की भाषाई व अन्य प्रकार पृष्ठभूमियों को समझने के लिए कौन-कौन सी विधियां, प्रविधियां और रणनीतियां अपनाई जा सकती है अब हम इसकी चर्चा करते है।

- प्रथम रणनीति है संवाद। बच्चों के साथ अनौपचारिक संवाद स्थापित करके शिक्षक बच्चों के भाषाई पृष्ठभूमि को समझ सकते हैं। साथ ही साथ उनमें भाषा के विकास के स्तर को भी समझ सकते हैं। तदनुरूप वे अपनी कक्षाकक्ष अंतर्क्रिया की योजना तैयार कर सकते हैं।

- द्वितीय पद्धति अवलोकन य निरीक्षण है। अवलोकन और परीक्षण के द्वारा शिक्षक बच्चों के ना केवल भाषाई पृष्ठभूमि को समझ सकते हैं बल्कि उनके सामाजिक संबंध, समूह गतिशीलता आदि का भी पता लगा सकते हैं।
- आपने देखा होगा कि कुछ बच्चे अंतर्मुखी प्रकार के होते हैं और कुछ बहिर्मुखी प्रकार के होते हैं। अंतर्मुखी प्रकार के बच्चे हमेशा शांत रहना पसंद करते हैं। ऐसे में संवाद स्थापित करने की समस्या उतपन्न हो जाती है और भाषाई पृष्ठभूमि के समझना कठिन हो जाता है। शिक्षक को संवाद पर जमी हुई बर्फ की परत को तोड़ना होता है। इसके लिए एक रणनीति अपनाई जा सकती है कि हम खेलों का आयोजन करें। विशेष रूप से हम स्थानीय खेलों का आयोजन करें और उन खेलों में बच्चों की समूह अंतरक्रिया का अवलोकन करें। क्योंकि स्थानीय खेलों में बच्चे बड़ा ही सहज और प्राकृतिक रूप से व्यवहार करते हैं। अगर हम कुछ मानक खेलों का आयोजन करते हैं, जो कि जिला य राज्य के स्तर पर खेले जाते हैं तो अच्छा होगा कि शिक्षक भी उन खेलों में सहभागी बने; और इस प्रकार सहभागी अवलोकन करने से शिक्षक बच्चों की भाषाई पृष्ठभूमि के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।
- भाषा परीक्षण एक ऐसी विधि है जिससे बच्चों की भाषाई पृष्ठभूमि को विस्वसनीय तरीके से समझा जा सकता है। यदि बच्चों की प्रथम भाषा विद्यालय भाषा से अलग है और बच्चों की प्रथम भाषा लिखित भाषा भी है तो शिक्षक मानक परीक्षणों का भी प्रयोग कर सकते हैं। दोनों (प्रथम और विद्यालयी) भाषाओं के लिए इन परीक्षणों का प्रयोग किया जा सकता है।
- आपके विद्यालय में कक्षा 6, 9 व 11 कई स्तरों पर कुछ विद्यार्थी सीधे नामांकन प्राप्त करते होंगे। इस प्रकार वे पूर्व की कक्षाएं कहीं दूसरी जगह से उत्तीर्ण करके आये होंगे। ऐसे में विद्यार्थियों की भाषा व शैक्षिक पृष्ठभूमि जानने के लिए आप बच्चों के विद्यालयी दस्तावेजों का विश्लेषण कर सकते हैं। इसके अलावा उनाके पूर्व के विद्यालय की साख और प्रोफाइल के आधार पर भी आप कुछ अंदाजा लगा सकते हैं।
- बच्चों की रुचियों को जानने के लिए हम एक सर्वेक्षण भी कर सकते हैं जिसमें बच्चे कुछ प्रश्नों के लिखित जवाब दें। जैसे कि 'मुझे क्रिकेट खेलना पसंद है'। यह परीक्षण आविष्कारणी(Inventory) के प्रकार का हो सकता है, जो शिक्षक संदर्भ विशेष को ध्यान में रखते हुए स्वयं तैयार कर सकते हैं। इससे मनोभाषिक पृष्ठभूमि के अलावा अन्य व्यक्तित्व से संबंधित जानकारियां भी प्राप्त की जा सकती हैं।

अभ्यास प्रश्न

6. बहुभाषिकता के कोई दो संज्ञानात्मक लाभ बताइए।
7. उर्दू भाषा का जन्म किस देश में हुआ?

8. भाषा प्रक्रमण में कौन कौन से दो तत्व है?
9. अनुवाद किस तरह का कौशल माना जाता है?
10. विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि की समझ क्यों आवश्यक है?

3.8 सारांश

आज हमारे सामने दो परस्पर विरोधी स्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी है। एक तो बढ़ते शिक्षा के स्तर, व्यापारिक गतिविधियों, शहरीकरण आदि कारणों से समाज में बहुभाषिकता में बढ़ोत्तरी हुई है, वही दूसरी ओर अल्पसंख्यक भाषा-भाषी लोग शैक्षिक, सामाजिक आर्थिक आदि कारणों से मानक भाषाओं को सीख रहे है और आर्थिक शैक्षिक महत्व की प्रभुत्वशाली भाषाओं से आकृष्ट होकर भाषा परिवर्तन तेजी से कर रहे है। आगे चलकर उनकी नई पीढ़ी अपनी मूलभाषा (Native Language) का प्रयोग पूर्णरूप से बंद कर दे रही है। इससे विरोधाभास यह हो रहा है कि बहुभाषी लोगो में वृद्धि हुई है और भाषाएँ कम हो रही है। एक अनुमान के हिसाब से प्रत्येक चौदह दिनों में एक भाषा मर जाती है। यदि यह क्रम जारी रहता है तो अगली शताब्दी तक विश्व में उपलब्ध लगभग 7000 भाषाओं मे से सिर्फ आधी ही रह जायेंगी (Rymer, 2012)। हम जानते है कि भाषा की हानि जैवविविधिता की हानि से कम घातक नहीं है (Muhlhausler, 1996)। अतः भाषाई पारिस्थितिकी में संतुलन बना रहे इस हेतु शिक्षकों को विशेषरूप से बहुभाषिकता की समझ होनी चाहिए और विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा किसी भी भाषा के प्रयोग के प्रति उदार होना चहिए। शिक्षकों में यह जागरूकता होना अति अनिवार्य है कि द्विभाषिकता य बहुभाषिकता हानिकारक नहीं , बल्कि शिक्षा में तो यह एक संसाधन है। लेकिन दूसरी भाषा का ज्ञान प्रथम भाषा की कीमत पर नहीं होना चहिए। शिक्षकों व विद्यालयों को धनात्मक द्विभाषिकता को प्रोत्साहित करना चाहिए न कि ऋणात्मक द्विभाषिकता को। धनात्मक द्विभाषिकता से तात्पर्य यह है कि विद्यार्थी दूसरी भाषा को सीखते हुए अपनी प्रथम भाषा को बनाये रखते है य उसमें भी विकास करते है (Lambert, 1975).

3.9 शब्दावली

1. **भाषाई परिस्थितिकी** (Language Ecology)- एक विषय जो विभिन्न भाषाओं की उनके पर्यावरण में उनकी स्थिति का अध्ययन करता है।
2. **समा-भाषिक** (Sociolinguistic)- भाषा के सामाजिक पक्ष से सम्बंधित।
3. **प्रशासकीय भाषा** (official Language)- जो भाषा प्रशासन के काम काज की भाषा हो।
4. **बहु-सांस्कृतिक** (Multicultural)- कई संस्कृतियों की विशेषताओं को समाहित किए हुए।

5. **अभिवृत्ति** (Attitude)- किसी वस्तु और व्यक्ति के विषय में सोचने और विश्वास कारेन क दृष्टिकोण।
6. **पुष्पन**: अनुकूल मौसम पाकर विकसित होना
7. **मूलभाषा** (Native Language)- जौ भाषा व्यक्ति किसी स्थान विशेष का वासी होने के कारण बच्पन से प्रयोग कर्ता है।
8. **धनात्मक द्विभाषिकता** (Additive Bilingualism)-दूसरी भाषा में ज्ञानार्जन प्रथम भाषा को भी बनाये रखे।
9. **प्रयोगशास्त्र** (Pragmatics)-भाषाशास्त्र की एक शाखा जो भाषा का किसी संदर्भ विशेष में प्रयोग के तरीकों का अध्ययन करती है।

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समा-भाषिक (Sociolinguistic) दृष्टिकोण से भाषा किसी समाज के विचारों, मान्यताओं, विश्वासों, प्रतीकों, संवाद व सामाजिक रीति रिवाजों की वाहक मानी जाती है।
2. भारत में लगभग 1000 भाषाएँ व बोलियां प्रयोग की जाती है?
3. प्रथम भाषा य मातृभाषा ही समझ का सबसे अच्छा माध्यम होती है?
4. हिंदी व उर्दू उत्तर प्रदेश की प्राशासनिक भाषाएँ है?
5. पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र (Translanguaging Pedagogy) उस स्थिति को कहेंगे जब शिक्षक विद्यार्थी को वह भाषा प्रयोग करने दे जिसे विद्यार्थी सबसे अधिक और अच्छे से जानता है।यह विचाधारा कक्षा शिक्षण में भाषा उदारता और किसी एक माध्यम भाषा पर निर्भरता से मुक्ति में विश्वास करती है।
6. बहुभाषिकता के दो संज्ञानात्मक लाभ:
    a. तार्किक क्षमता का विकास
    b. उच्च-संज्ञानात्मक क्षमताएं में बढोत्तरी।
7. उर्दू भाषा का जन्म भारत देश में हुआ?
8. भाषा प्रक्रमण में विश्लेषण और नियंत्रण। से दो तत्व है?
9. अनुवाद या अनुकृति एक बहुभाषिक कौशल है।
10. विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि की समझ ही आपको संपूर्ण(Complete) शिक्षक बनाती है।

3.11 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. BBC (2015). Uncommon tongue: Pakistan's confusing move to Urdu. Dated 12 September 2015, available on http://www.bbc.com/news/world-asia-34215293.
2. Bialystock, E. (1991). Language processing in bilingual children. Cambridge: Cambridge University Press.
3. Borodotsky, L. (2001). Does Language Shape Thought?: Mandarin and English Speakers' Conceptions of Time. Cognitive Psychology 43, 1–22
4. Borodotsky, L. (2009). How does our language shape the way we think? (Conversation dated 06/11/2009) available on https://www.edge.org/conversation/lera_boroditsky-how-does-our-language-shape-the-way-we-think
5. Bowerman, M. & Levinson, S. C. (2001). Introduction. In M. Bowerman and S. C. Levinson (Eds.). Language acquisition and conceptual development. Cambridge: Cambridge University press.
6. Cook, V. J. (2002). Portraits of the L2 User. Clevedon: Multilingual Matters.
7. Cummins, J. (1981). The role of primary language development in promoting educational success for language minority students. In California State Department of Education (Ed.), *Schooling and language minority students: A theoretical framework* (pp. 3-49). Los Angeles: Evaluation, Dissemination and Assessment Center, California State University.
8. Dialects of Uttarakhand. Retrieved from http://www.uttaranchal.org.uk/dialects.php
9. Dua, H. R. (2008). Ecology of multilingualism: language, culture and society. Mysore: yashoda publication.
10. Edward, J. (2010). Language diversity in the classroom. Bristol (UK): Multilingual Matters.
11. Garcia, O. (2009). Bilingual education in 21st century: global perspective. West Sussex(UK): Wiley-Blackwell.
12. Garcia, O., and Wei, L. (2014). Translanguaging: Language, Bilingualism and Education. New York: Palgrave Macmillan.

13. Grosjean, F. (2016). What is translanguaging?: An interview with Ofelia García (March, 02 2016). Psychology Today. Retrieved from https://www.psychologytoday.com/blog/life-bilingual/201603/what-is-translanguaging
14. Lambert, W. E. (1975). Culture and language as factors in learning and education. In A. Wolfgang (Ed.). Education of Immigrant Students Toronto: O.I.S.E
15. Lars, A. and Trudgill, P. (1990). Bad Language. Oxford: Blackwell.
16. Muhlhausler, P. (1996). Linguistic ecology: language change and linguistic imperialism in the pacific region. London: Routledge.
17. NCERT (2005). National Curriculum Framework, 2005. New Delhi: NCERT.
18. Rymer, R. (2012). Vanishing Voices, National Geographic (July). Available on http://ngm.nationalgeographic.com/2012/07/vanishing-languages/rymer-text

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. बहुभाषिकता क्या है? और यह किस प्रकार से एक संसाधन हो सकती है?
2. कक्षा में भाषाई विभिन्नता का वर्णन करते हुए, बच्चों की भाषाई पृष्ठभूमि को समझने की विधियों की विवेचना किजिए।

इकाई 4 - विद्यालय की भाषा बनाम घर की भाषा या बोली

School Language vs Home Language or 'Dialects'

4.1 प्रस्तावना
4.2 घर की भाषा
4.3 घर की भाषा (मातृभाषा) का महत्व
4.4 घर की भाषा बनाम विद्यालय की भाषा
4.5 शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का महत्व
4.6 सारांश
4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पिछले इकाई में आपने बहुभाषिकता (Multilingualism) और कक्षा-कक्ष में बहुभाषिक परिस्थितियाँ होने के बावजूद कैसे विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाय के बारे में अध्ययन किया। इस अध्याय में आप घर की भाषा या मातृभाषा और विद्यालय में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा के बारे में अध्ययन करेंगे।

शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया बिना सूचनाओं (Information) तथा विचारों (Thoughts) के आदान प्रदान के संभव नहीं है। शिक्षक या विद्यार्थी होने के नाते आप अपने प्रधानाचार्य से अथवा छात्रों से कुछ न कुछ कहते हैं या विद्यार्थी आपसे कुछ पूछते हैं या प्रधानाचार्य बुलाकर आपको आदेश देते हैं, प्रशंसा या आलोचना करते हैं, उपरोक्त सभी क्रियाओं में किसी न किसी माध्यम की आवश्यकता होती है। जैसे - लिखकर, संकेत द्वारा, बोलकर या अन्य किसी माध्यम द्वारा। इन सब के लिए आप किसी न किसी भाषा का प्रयोग आवश्यक रूप से करेंगे। विचारों के आदान प्रदान के लिए किसी भाषा का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतः यह देखने में आया है कि एक छोटा बच्चा अपने घर में जिस तरह की भाषा में समवाद स्थापित करने का अभ्यस्त होता है उस तरह की भाषा का प्रयोग विद्यालयों में एवं कशाओं में होता ही नहीं है। जब वह इस तरह की परिस्थिति से दो- चार होता है तो उसका आत्मविश्वास डगमगा जाता है और वह विद्यालयी क्रियाकलापों से कन्नी काटने लगता है। यदि शिक्षक विद्यार्थी के इस तरह की समस्या को ध्यान में रखे तो काफी हद तक समस्या का समाधान किया जा सकता है। किन्तु दुर्भाग्य से हमारे यहाँ के शिक्षा व्यवस्था में इस पर ध्यान न देने की परम्परा ही विकसित हो गई है। कई

मामलों में तो मातृभाषा या घर की भाषा में संवाद करने की स्थिति में विद्यार्थियों को दण्डित करने के मामले भी प्रकाश में आयें है।

प्रस्तुत इकाई में आप घर की भाषा (मातृभाषा) का अर्थ, महत्व और विद्यालय की भाषा का अभिप्राय तथा विद्यालय भाषा बनाम घर की भाषा का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

4.2 घर की भाषा (The language of Home)

घर की भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जो बच्चा अपने घर पर बोलता है। यदि दूसरी भाषा में कहा जाय तो यह कि बच्चा जिस भाषा में अपने भाई , बहन और माता –पिता के साथ संवाद स्थापित करता है। मातृभाषा बच्चा अपनी मां से सीखता है। पर मां की भाषा को मातृभाषा नहीं कहते है। बच्चा जन्म के बाद अपने परिवेश से जो भाषा सीखता है, उसे मातृभाषा कहते है। मातृभाषा बच्चे को उपहार स्वरूप मिलती है। माता, पिता, भाई, बहन या घर के अन्य बड़े लोग बच्चे को भाषा का संस्कार देते है।

भाषाविज्ञानियों के अनुसार बच्चों को ऐसी भाषा में पढ़ाने के विचार का समर्थन करते हैं जो बच्चे आसानी से समझते हों। वे मानते हैं कि बच्चा जब विद्यालय में आता है तो अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से काफी कुछ सीखकर आता है। इस सीखने में उसके घर की भाषा भी शामिल होती है। इसलिए बच्चों को शुरुआती कक्षाओं में उनकी भाषा में ही पढ़ाना चाहिए। इससे बच्चों का शिक्षण एक ऐसी भाषा में होना सुनिश्चित किया जा सकेगा जिसके साथ वे सहज होंगे। यानि सुनकर समझने वाले स्तर तक उनका परिचय इस भाषा से होगा। घर की भाषा के साथ खास बात यह होती है कि बच्चा इस भाषा को सहज़ता (Effortlessly) के साथ आस पास के माहौल (Environment) से सीखता है। दूसरे शब्दों में यदि कहा जाय तो बच्चा घर की भाषा को इस तरह से सीखता है कि इसमें सीखने जैसी कोई बात ही नहीं रह जाती है। इस बात में कहीं दो राय नहीं है कि छात्र अपना अधिकांश समय घर और समुदाय में अनौपचारिक (Informal) रूप से सीखने में लगाते हैं। हालांकि, पाठ्यपुस्तक को ही निर्देशों का मुख्य मानने की प्रवृत्ति का अर्थ यह है कि छात्र जिस कौशल, ज्ञान और अनुभवों के साथ कक्षा में आते हैं, शिक्षक उन्हें अनदेखा कर सकते हैं। बच्चे जब पहली बार विद्यालय आते हैं, तो जिन अपरिचित लोगों, दिनचर्या और भाषा से उनका सामना होता है, उससे वे अचंभित हो जाते हैं। विद्यालय के शिक्षक विद्यार्थियों के ज्ञात सांस्कृतिक अभ्यासों और भाषाओं की विविधता को महत्व देकर, उन्हें इस नए माहौल में ज्यादा सुरक्षित महसूस करा सकते हैं। बच्चों को हर दिन घर-आधारित शिक्षा और विद्यालय-आधारित शिक्षा के बीच एक पुल पार करना पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न

1. घर की भाषा से आप क्या समझते हैं ?
2. आप अपने विद्यार्थी के उसके घर के भाषा एवं मानक भाषा में सामंजस्य कैसे स्थापित करेंगे ?

4.3 घर की भाषा (मातृभाषा) का महत्त्व(Importance of home language (Mother tongue)

भाषा समाज की संस्कृति का आवश्यक तत्व है। वास्तव में भाषा सामाजिक संगठन (Social Organisation) की सभी क्रियाओं(activities) का आधार है। व्यक्ति की प्रत्येक क्रिया पर भाषा का प्रभाव पड़ता है और वह जो भी क्रिया करता है, उसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहां एक तथ्य पर ध्यान देना जरूरी है कि बच्चा अपने लंबे जीवनकाल में अन्य भाषाओं और संस्कृतियों (Cultures) के संपर्क में भी आयेगा। इसलिए हमें उसे अन्य भाषाओं को सीखने के लिए तैयार करना जरूरी है। जिसकी जरूरत उन्हें भविष्य में होगी। उदाहरण के तौर पर हिंदी, अंग्रेजी इत्यादि। इसके अभाव में बच्चों को कई तरह की समस्याओं का सामना करना होता है कि क्योंकि उनके शिक्षक बच्चों को क्षेत्रीय भाषाओं में समझाते हैं और उनकी किताबें हिंदी या अंग्रेजी में होती हैं। अंग्रेजी पढ़ाने वाली स्थिति तो और भी ख़तरनाक होती है बच्चे को हर शब्द का हिंदी में अनुवाद करके पढ़ना होता है। मैनगो मतलब आम, वाटर मतलब पानी। ऐसी स्थिति में एक बच्चे को कई तरह की चुनौती (Challenges) का सामना करना होता है और वह उस भाषा में अपनी रुचि खो देता है।

बच्चों को सही तरीके से पढ़ना सिखाना भी जरूरी है। पढ़ने को समझ के साथ जोड़कर देखने के लिए प्रोत्साहित करने की जरूरत है। उनको उदाहरणों के माध्यम से भाषा का इस्तेमाल करने की कला से अवगत कराना चाहिए। मसलन समझ का पढ़ने के साथ वेसा ही रिश्ता है जैसा सुनने और समझने का है। यानी दोनों साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियाएं हैं। निम्न बिन्दुओं के आधार पर मातृभाषा शिक्षा के महत्त्व को समझा जा सकता है।

1. **शिक्षा का आधार (Base of Education)** – बालक की मातृभाषा शिक्षा का आधार होती है। उसे एक स्वतंत्र विषय के रूप में अध्यापन के साथ-साथ शिक्षा के माध्यम के रूप में भी स्वीकार करना चाहिए। बालक को लिखना और पढ़ना सिखाने के लिए भाषा शिक्षण की आवश्यकता होती है। भाषा शिक्षा में मातृभाषा को ही स्वीकार करना अधिक उचित होता है।
2. **अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता (Naturality in Expression)**– एक बालक के लिए अपने विचार अभिव्यक्त करने हेतु मातृभाषा सबसे उपयुक्त भाषा होती है। बालक अपने विचारों और भावनाओं को सरल और स्पष्ट रूप से मातृभाषा में प्रकट कर सकता है। ऐसा वह अन्य किसी भाषा में नहीं कर सकता है। इसलिए मातृभाषा से विचार अभिव्यक्ति में स्वाभाविकता आती है।
3. **मातृभाषा प्रभावोत्पादक (Effectivenes of Mothertongue)** – बालक की मातृभाषा पर अच्छी पकड़ होती है। मातृभाषा में बोलने के लिए बालक को विचार नहीं करना पडता। इससे अभिव्यक्ति में स्वभाविकता आती है। जो दूसरों पर प्रभाव डालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसलिए मातृभाषा प्रभावोत्पादक होती है।

4. **सरसता एवं पूर्णता की अनुभूति(The notion of simplicity and completeness)** - व्यक्ति जन्म के बाद से ही मातृभाषा का प्रयोग करने लगता है। व्यक्ति चाहे कितनी ही भाषाएं सीख जाए लेकिन उसे उसमें सरसता और पूर्णता की अनुभूति नहीं होती है। बालक को मातृभाषा के ज्ञान से ही सरसता एवं पूर्णता की अनुभूति होती है।
5. **सृजनात्मकता का विकास (Development of Creativity)** – बालक की सृजनात्मक शक्ति का विकास मातृभाषा में ही अधिक होता है। व्यक्ति चाहे कितनी ही भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर ले, लेकिन उनमें साहित्य कार्य करना बहुत कठिन कार्य होता है । मातृभाषा में साहित्य कार्यकरना सरल होता है क्योंकि वह बचपन से ही उसके साहचर्य में होता है।
6. **व्यक्ति के विकास में सहायक (Helpful in personality development)** – परिवार और समाज व्यक्ति की प्रथम पाठशाला होती है। परिवार और समाज से ही वह अच्छे संस्कार गृहण करता है। यह कार्य मातृभाषा में ही किया जाता है। माता-पिता और परिवार वाले मातृभाषा में ही बालक को अच्छे बुरे में अन्तर करना सिखाते है। यह उनके व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है।
7. मातृभाषा हमारी संस्कृति का अभिन्न होती है। किसी भी मानव संस्कृति को समझने और आत्मसात करने के लिए **सांस्कृतिक एकता में सहायक (Helpful in Cultural Unity)** आवश्यक है कि हमें पहले उनकी भाषा को समझे। मातृभाषा द्वारा ही मनुष्य एक दूसरे को समझते है और एक दूसरे से अपने विचारों व भावनाओं का आदान प्रदान करते है। मातृभाषा द्वारा ही हम अपने रीति रिवाजों को एक पीढी से दूसरी पीढी तक पहुंचाते है। मातृभाषा द्वारा ही व्यक्ति एक दूसरे से सम्पर्क करते है। मातृभाषा ही मानव सभ्यता और संस्कृति का आधार है। मातृभाषा के बिना मानव संस्कृति की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।
8. **सामाजिक कुशलता (Social Expertise)**– सामाजिक जीवनयापन के लिए व्यक्ति की मातृभाषा का ज्ञान आवश्यक है । मातृभाषा द्वारा ही व्यक्ति का मानसिक और भावनात्मक विकास होता है। इसके द्वारा ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का गठन होता है। मातृभाषा द्वारा ही व्यक्ति का नैतिक विकास होता है। समाज में मातृभाषा ही व्यक्ति के विचारों के आदान प्रदान का माध्यम होती है। इससे सामाजिक कुशलता आती है।
9. **भावाभिव्यक्ति का साधन (Instrument of self expression)** – व्यक्ति के लिए भावाभिव्यक्ति का सर्वोतम साधन मातृभाषा है। व्यक्ति मातृभाषा से अपने विचारों और भावनाओं को सरल और स्पष्ट तरीके से व्यक्त कर सकता है। मातृभाषा में बोलने के लिए उसे विचार करने की आवश्यकता नहीं होती है। वह सहज भाव से विचार अभिव्यक्त कर सकता है। व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास के साथ-साथ मातृभाषा ही व्यक्ति का विचारों और भावाभिव्यक्ति के स्वाभाविक साधन के रूप में विकसित होती रहती है।

अभ्यास प्रश्न

3. घर की भाषा के महत्व पर प्रकाश डालें ?
4. "भाषा समाज की संस्कृति का आवश्यक तत्व है"। इस कथन के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करें।

4.4 घर की भाषा बनाम विद्यालय की भाषा (Home Language Vs School Language)

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राथमिक विद्यालय में पढ़ने वाले अधिकतम बच्चे अपने घर-परिवार, समुदाय में बोली जाने वाली भाषा ही बोलते हैं। यह भाषा हिन्दी के स्वीकृत मानक खड़ी बोली से इतर होती है। हमारे प्रदेश में बोली जाने वाली ऐसी भाषाओं में अवधी, ब्रज, भोजपुरी, बुन्देली, कुमाऊँनी, गढ़वाली आदि प्रमुख हैं। स्कूलों में शुरुआत से ही बच्चों को मानक भाषा सीखाने पर जोर दिया जाने लगता है जिससे बच्चे भाषा सीखने से कतराने लगते हैं। बच्चे घर पर बोली जाने वाली भाषा के असर के कारण मानक भाषा के प्रयोग में "अशुद्धियाँ " करते हैं - "उसने कही", "हम लोगों ने जाना है" आदि। इस पर उन्हें डांट पड़ती है, जबकि शुरु में ही शुद्धता पर जोर देने से भाषा सीखने में एक बड़ी रुकावट खड़ी हो जाती है। इसका एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि अध्यापक विद्यार्थियों को बार –बार टोकने लगते हैं । शिक्षकों की बार-बार टोका-टाकी और चुप कराने से बच्चों में घर की भाषा के प्रति हीनभावना भी पैदा हो जाती है और वे आत्मविश्वास के साथ खुलकर अपनी बात नहीं कह पाते। कक्षा में सार्थक / अर्थपूर्ण बातचीत के पर्याप्त अवसर नहीं उपलब्ध हैं। इस तरह का दबाव या अनुशासन रहता है कि बच्चे चुपचाप कार्य करें। भाषा सीखाने में मौखिक पक्ष की अक्सर उपेक्षा की जाती है। इससे बच्चे आगे की कक्षाओं में अपनी बात कहने में हिचकते हैं। इससे मौखिक अभिव्यक्ति (oral expression) जैसे सशक्त माध्यम का प्रयोग और विकास नहीं हो पाता। जबकि यह भाषा शिक्षण का जरूरी पहलू है।

बच्चे अपने घर-परिवेश और समुदाय (Community) में हो रही बातों को ध्यान से सुनते रहते हैं तथा उनके साथ हो रहे हाव-भावों को देखते-समझते हैं। हाव भाव के साथ प्रयोग होने वाले संकेतों के साथ अर्थ समझते और निकालते हैं। शुरु में बच्चे संकेतों के आधार पर बात को पकड़ने का प्रयास करते हैं। स्वयं भी वे हाव-भावों एवं संकेतों का माध्यम के रूप में प्रयोग करते हैं। धीरे-धीरे वे कहने की कोशिशों और उनके परिणामों को जानने लगते हैं। फिर वे अपने आस-पास प्रचलित शब्दों को पकड़ना शुरु कर देते हैं। शब्द गूंजते समय वे उस दौरान आस-पास हो रहे व्यवहारों को भी देखते हैं। एक दौर ऐसा आता है जब वे सुनना-समझना तेज कर देते हैं। इस प्रकार वे सुनकर, समझने की ओर बढ़ते हैं। जब उन्हें यह समझ आती है कि वे शब्दों को बोलकर कुछ हासिल कर सकते हैं तो वे उनका उपयोग करने लगते हैं। क्रमश: उनका काम चलाऊ शब्दभंडार बढ़ता जाता है। बच्चे अपने कथनों और उनके प्रभाव से अपनी स्वयं की एक अलग तरह भाषा विकसित करते हैं। विद्यालय आने से पहले बच्चे काफी कुछ बोल सकते हैं। ध्यान

देने वाली बात यह है कि बच्चा भाषा ऐसे समय सन्दर्भ से सीखता है, जहां उसका ध्यान भाषा केंद्रित नहीं है। भाषा सीखने में सुनने बोलने, पढ़ने-लिखने का क्रम तो है, लेकिन दरअसल हमेशा ऐसा ही नहीं होता है। क्या जब 'सुनना' होता है तो 'बोलना' रुका रहता है या 'बोलने' के समय 'सुनना' स्थगित रहता है ? यह सब साथ-साथ भी चलता रहता है - सुनना, बोलना, पढ़ना इत्यादि।

क्या विद्यालय में बच्चों को शुरु में सुनने-बोलने (Listening-speaking) के पर्याप्त अवसर दिये जाते हैं? बच्चा जब विद्यालय में पहली बार आता है तो परम्परागत शिक्षण (Conventional teaching) में शिक्षक उससे सीधे लिखने-पढ़ने का कार्य कराने लगते हैं। वह समझ ही नहीं पाता कि क्यों कुछ आकृतियां जबरन उसे दिखाई पढ़ाई और लिखाई जा रही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यही मूल समस्या है । वास्तव में वह घर जैसा वातावरण चाहता है। विद्यालय नामक इस जगह पर उसके अपने अनुभवों को सुनने वाला कोई नहीं है, उसकी 'अपनी भाषा' के लिये कोई जगह नहीं होती। अध्यापक के लिये जरूरी है कि पहले वह बच्चे की भाषा को स्वीकार करे, तब उसे अपनी विद्यालय की भाषा (मानक भाषा) की ओर ले जाये। विद्यालय में बच्चों को विद्यालय की भाषा (मानक भाषा) सुनने, समझने, बोलने के अधिक मौके देना चाहिये। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि बच्चों की घरेलू भाषा (Home language) को छोटा माना जाय या उपेक्षित किया जाय।

शिक्षक की भूमिका (The Role of the Teacher)

शिक्षकों द्वारा यह क्रम अपनाने से बच्चों को शायद अधिक मजा आयेगा और भाषा सीखने की गति तीव्र होगी। कक्षा में ऐसे वास्तविक और रोचक सन्दर्भ बनाये जायें जिनमें तरह-तरह से भाषा का उपयोग करना हो। बच्चों के अनुभव सुनना, उनमें आपस में 'गपशप' करवाना, उन्हें कहानियां-कविताएं सुनाना, कहानियां-कविताएं कहलवाना ऐसी ही गतिविधियां है। इनके जरिये उन्हें मौखिक अभिव्यक्ति के लिये प्रेरित किया जा सकता है। मौखिक अभिव्यक्ति के साथ उन्हें अभिनय या अंग - संचालन के मौके देना भी जरूरी है। बच्चों के पंसद के विषयों पर छोटे-छोटे भाषण देने के मौके भी मिलने चाहिये। जब उन्हें लगेगा कि विद्यालय भी घर जैसा है, यहाँ बहुत मजेदार बातें सिखाई / कराई जाती हैं, तो हमारा विश्वास है कि वे स्वाभाविक रूप से बोलेंगे। बच्चों को विद्यालय व कक्षा में बातचीत के पर्याप्त मौके दिये जायें। यह कार्य उनकी भाषा के विकास में मददगार होगा। बातचीत भाषा सिखाने का जादुई माध्यम है। मौखिक अभिव्यक्ति के पर्याप्त अभ्यास के बाद ही लिखित कार्य की ओर कदम बढ़ाना ठीक रहेगा।

भाषा-ज्ञान के सन्दर्भ में गिजुभाई द्वारा 1932 में ही कही गई एक और बात आज भी प्रासंगिक है –

"इधर बालकों को जल्दी से जल्दी अक्षरज्ञान और अंकज्ञान दिलाने का मोह बढ़ता जा रहा है, हमें उस मोह को तोड़ना है। हर कोई शाला में और बाहर एक ही प्रश्न पूछता है: 'इस शाला का अभ्यासक्रम क्या है? इस शाला में बालक क्या पढ़ते हैं? कितना सीखे हैं?' लेकिन कहीं भी इस बात को लेकर पूछताछ नहीं की जाती कि बालकों का कितना विकास हुआ है। हमें इस बात पर ध्यान देना है कि बालकों का

सम्मान कैसा है, किस उम्र में वे अक्षरज्ञान और अंकज्ञान ले सकते हैं। बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति और शक्ति को जान कर ही और उसके अनुकूल रह कर ही हम उसे ज्ञान प्रदान कर सकते हैं।..... बालक को अक्षरज्ञान कराते समय आँख और स्पर्श का एक साथ उपयोग होना चाहिए..... उन्हें अक्षरों की पहचान का अवसर दिया जाना चाहिए।" {'प्राथमिक शाला में शिक्षक, गिजुभाई-ग्रंथमाला-10', प्रकाशक: मांटेसरी-बाल-शिक्षण-समिति, राजलदेसर (चुरू) पृ. 62, 69}

यदि गिजुभाई के इस कथन को ध्यान में रखते हुए बात की जाय तो यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि बच्चा जब विद्यालय में आना प्रारम्भ करता है तो उस के पास अपनी स्वयं की भाषा पहले से होती है, जिसका प्रयोग वह अपनी समझ के मुताबिक़ करता है । उसके पास अपनी शब्दावली या शब्दकोष होता है । जिस का प्रयोग वह प्रमुख तौर पर बोलचाल में करता है (कहते चलें कि अगर हम इस बात से सहमत हैं तो हमें यह भी मानना होगा कि बच्चे का दिमाग उस समय एक कोरी स्लेट नहीं होता है – उस पर भाषा-ज्ञान के सन्दर्भ में बहुत कुछ अंकित हो चुका होता है)। भाषा की कक्षा में यदि हम इस बात का ध्यान रखते हुए चलें तो बच्चे के साथ आदान-प्रदान सहज होने की अधिक सम्भावना रहेगी। बच्चे के पास पहले से मौजूद शब्दावली को हम आधार बनाते हैं तो उसकी रुचि और ध्यान तो हम खींच ही सकते हैं, उसका विश्वास भी जीत सकते हैं – और उसका आत्मविश्वास बढ़ा सकते हैं।

अब असली समस्या यह है कि घर की भाषा और विद्यालय भाषा में सामंजस्य कैसे स्थापित किया जाय। इसके लिए खेल, कहानियाँ और पहेलियों के माध्यम है जिसके रास्ते हम बच्चों की प्रवृत्ति के अनुकूल कार्य करते हुए उनके भाषा-ज्ञान में सामंजस्य और समृद्धि ला सकते हैं। जाने-माने शिक्षाविद प्रो.कृष्ण कुमार अपने लेख 'कहानी कहाँ खो गई?' में हमारा ध्यान इस ओर दिलाते हैं कि

"बच्चों को कहानी सुनाने (Story- telling) की एक लम्बी परम्परा भारत में रही है.... कहानी परम्परागत रूप में जिन परिस्थितियों में सुनाई जाती थी, वे आज के पारिवारिक और सामाजिक जीवन में उपलब्ध नहीं हैं.....लेकिन परिवार और समाज की नई परिस्थितियों में बच्चों को कहानी सुनाने की उतनी ही ज़रूरत है जितनी पहले थी.....[क्योंकि] लोक कथाओं और परीकथाओं की संरचना छोटे बच्चों की सोचने की शैली से मेल खाती है, और यही इन कहानियों के प्रति छोटे बच्चों के आकर्षण का ख़ास आधार है..... इन कहानियों को सुनते हुए छोटे बच्चे अपनी मातृभाषा की बुनियादी लयों के सम्पर्क में आते हैं। शब्द और वाक्य रचना का एक पूरा भण्डार उनके हाथ लगता है। इस भण्डार से वंचित रह जाने वाले बच्चे कुछ बड़े होकर जब पढ़ना और लिखना सीखते हैं, तब उनके लिए भाषा एक यांत्रिक चुनौती बन जाती है। वह सहज ज़रूरत या इच्छा नहीं बन पाती। बाद में वे ध्यानपूर्वक सुनने, संयत ढंग से बोलने या संवाद में हिस्सा लेने जैसी क्षमताओं का विकास नहीं कर पाते।" ('दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख', एकलव्य का प्रकाशन, पृष्ठ 18-19).

प्रो. कृष्ण कुमार द्वारा कही गई बात में कुछ अधिक जोड़ने की आवश्यकता नहीं है – वे जो कह रहे हैं, उसमें भाषा-शिक्षण के लिए कहानी का महत्व स्पष्ट है। कहानी सुनाना भी एक कला है और इस कला का प्रयोग यदि एक शिक्षक कक्षा में कर पाता है तो उस भाषा के अलग-अलग पहलू वह बच्चों के लिए

उजागर कर रहा होगा – विशेष तौर से उच्चारण, बोलने में उतार-चढ़ाव तथा भाषा का वाक्य-विन्यास इत्यादि। शिक्षक की ओर से थोड़ी सी मेहनत की जाए और इस ओर ध्यान देने की प्रवृत्ति हो तो यकीनन इस प्रक्रिया से बच्चे बहुत कुछ हासिल कर सकते हैं। महत्वपूर्ण यह भी है कि इसके चलते शिक्षक और बच्चों में आत्मीयता का सम्बन्ध बनेगा। वह चाहे खेल-खेल में भाषा-प्रयोग की बात हो या फिर कहानियों-पहेलियों के माध्यम से बच्चे की भाषा को समृद्ध करने की बात, ये प्रक्रियाएँ इस बात का उदाहरण हैं कि बच्चे की 'कच्ची' भाषा को किस प्रकार विद्यालय के औपचारिकता भरे वातावरण में भी स्थान दिया जा सकता है। साथ ही इस बात की ओर भी इशारा करती हैं कि किस प्रकार उनकी भाषा के 'कच्चेपन' को परिपक्वता की ओर ले जाया जा सकता है।

भाषा-ज्ञान के सन्दर्भ में दो बातें समझना बेहद ज़रूरी होने के साथ- साथ महत्वपूर्ण भी हैं। पहली बात यह कि , जितना अधिक हम बच्चे को भाषा के सम्पर्क में आने के मौके देंगे (भाषा सुनने-लिखेने-बोलने-पढ़ने के मौके) उतना ही अधिक समृद्ध उसकी शब्दावली (Vocabulary) होगी और उतनी ही भाषा के इस्तेमाल की गहरी समझ विकसित होगी। दूसरा, यह सही है कि एक शिक्षक पर पाठ्यक्रम पूरा करने का दबाव लगातार रहता है मगर इस दबाव में आए बिना, हो सके तो पाठ्यक्रम (Curriculum) में ही गुंजाइश निकालते हुए, नहीं तो उसके बाहर जाते हुए भी, कुछ भाषा सम्बन्धी काम हम बच्चों के साथ करें तो यकीनन उनकी भाषा सम्बन्धी दक्षताएँ (Language related competetncies) बेहतर होंगी। आम तौर पर विद्यालय में भाषा-ज्ञान की औपचारिक शुरुआत वर्णमाला से की जाती है। इसके कारण हम बच्चों के पास पहले से उपलब्ध भाषा-ज्ञान जो कि वह अपने माहौल में सीखता है और शब्द-भण्डार की ओर ध्यान नहीं दे पाते। पढ़ाने के अपने तरीकों में हमें इस बात का ध्यान रखने की कोशिश की ओर बढ़ना चाहिए ताकि बच्चे के पास पहले से उपलब्ध खजाने का लाभ भाषा-शिक्षण के लिए मिल पाए।

अभ्यास प्रश्न

5. भाषा के सन्दर्भ में गीजू भाई के विचारों के महत्व को प्रतिपादित करें। ?
6. "घर की भाषा बनाम विद्यालय की भाषा सम्बंधित विभिन्न आयामों को आप किस तरह से देखते हैं ? स्पष्ट करें।
7. भाषा ज्ञान के संदर्भ में शिक्षक की भूमिका कैसी होनी चाहिए ?

4.5 शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का महत्व (The Importance of Mother Tongue as the Medium of Education)

मातृभाषा में अन्य विषयों की तरह एक विषय ही नहीं है बल्कि यह समस्त विषयों के अध्ययन का माध्यम भी है। व्यक्ति में भाषा से संबंधित ज्ञान जितना अधिक गहरा और व्यापक होता है, उतनी ही

तीव्रता और सरलता से अन्य विषयों का ज्ञानार्जन करता है। यदि व्यक्ति को मातृभाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में शिक्षण कार्य करवाया जाता है, तो वह उतना स्वाभाविक और बोधगम्य नहीं होता है जितना मातृभाषा में। अत: मातृभाषा में शिक्षण न केवल व्यक्ति के भाषायी और साहित्यिक ज्ञान में वृद्धि करता है बल्कि उसके अन्य विषयों के ज्ञान का मार्ग भी प्रशस्त करता है। बालक बचपन से ही मातृभाषा के साहचर्य (association) में रहता है, इसलिए उसका भाषायी ज्ञान सम्पन्न और समृद्ध होता है और उसकी अभिव्यक्ति भी कर पाता है। जैसे-जैसे व्यक्ति मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ग्रहण करता जाता है–वैसे वैसे उसकी भाषा और भी समर्थ और सम्पन्न होती जाती है। मातृभाषा और शिक्षण की भाषा एक होने से शिक्षण मे संबंध स्थापित हो जाता है। व्यक्ति को जो कुछ भी पढाया जाता है वह सहज ही ग्रहण कर लेता है और यह ज्ञान स्थायी होता है। गांधी जी ने मातृभाषा को व्यक्ति के लिए बहुत ही आवश्यक माना है उन्होंने कहा है कि "मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिए मातृभाषा माता का दूध" । गांधीजी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के पक्ष में थे। उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा न होने से दु:खी होकर गांधीजी कहा कि "यदि मैं कुछ दिनों के लिए तानाशाह हो जाउं तो मातृभाषाओं को तत्काल ही उच्च शिक्षा का माध्यम बना दूं। इसके लिए भले ही उन प्रोफेसरों को हटाना पडे जो अपने को मातृभाषा में पढाने मे असमर्थ कहने में गर्व समझते है । " अनेक प्रयासों के बाद माध्यमिक स्तर तक मातृभाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया गया है। लेकिन आज में भी उच्च शिक्षा और विश्व विद्यालय शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है। इसकी वजह से भारत में मातृभाषाओं की स्थिति दयनीय है। भारत ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से आज भी पिछड़ा हुआ है। जब तक मातृभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बना दिया जाता, तब तक न तो मातृभाषा का विकास हो सकता है ना ही देश की उन्नति हो सकती है। मातृभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम न बनाया जाने के पीछे यह तर्क दिया जाता है कि भारत में उच्च स्तर की पाठ्य पुस्तकों का अभाव है। मातृभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया जाने के बाद ही मातृभाषा में पुस्तकें लिखी जा सकती है। टैगोर ने इस संबंध में लिखा है कि "मातृभाषा भाषा माध्यम होने पर उसमें पाठ्य पुस्तकें अपने आप लिखी जाएगी। जब वह माध्यम नहीं है तो इसमें पाठ्य पुस्तकें क्यों लिखी जाएगी । पाठ्य पुस्तकों के अभाव में मातृभाषाओं को माध्यम न बनाना वैसी ही बात है जैसे वृक्ष उस समय तक न बढे जब तक पते पहले न निकल आये या सरिता अपना प्रवाह रोक दें जब तक उसके तटों का निर्माण नहीं हो जाये''

अत: मातृभाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाकर उसे अधिक सम्पन्न और समृद्धशाली बना सकते हैं ।

अभ्यास प्रश्न

8. शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा के महत्व को प्रतिपादित करें । ?
9. गांधी जी के मातृभाषा के संदर्भ में विचारों को स्पष्ट करें ।

4.6 सारांश

हमारे शिक्षा व्यवस्था के साथ गड़बड़ी यह है कि हम पाठ्यपुस्तक, कक्षाएं और परीक्षा व्यवस्था की तिकड़ी के दबाव के चलते हमारी विद्यालयी शिक्षा में बहुत कुछ है जिससे बच्चे वंचित रह जाते हैं। विद्यालय में भाषा से सम्बद्ध बंधे-बंधाए पाठ्यक्रम के चलते बच्चा अपनी स्वाभाविक, जीवन्त भाषा से दूर होता चला जाता है। शिक्षक होने के नाते यह भी हमारे लिए विचारणीय मुद्दा है कि विद्यालयी शिक्षा के तहत इस्तेमाल होने वाली भाषा की औपचारिकता का सम्बन्ध बच्चे की अनौपचारिक भाषा की जीवन्तता के साथ कैसे स्थापित किया जाए।

4.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार, के. 2001, स्कूल की हिंदी, पटना: राजकमल।
2. कुमार, प्रो. कृष्ण , दीवार का इस्तेमाल और अन्य लेख, एकलव्य का प्रकाशन, पृष्ठ 18-19
3. चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर. लैंग्वेजेस 35.1.26-58
4. चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्ली: माध्यम बुक्स।
5. चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑफ़फ द थ्योरी ऑफ सिनटेक्स, कैंब्रिज: एम. आई. टी. प्रेस।
6. चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर।
7. दुआ, एच. आर. 1985, लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।
8. हैबरमास, जे. 1998, ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ कम्युनिवेफशन, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
9. हैबरमास, जे. 1998, दी फिलॉस्फिकल डिसकोर्स ऑफ मॉडर्निटी, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
10. शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964 -1966, शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
11. नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।
12. पटनायक, डी. पी. 1981, मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुवेफशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. पटनायक, डी. पी. 1986, स्टडी ऑफ लैंग्वेजेज, ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।
14. रिचड्र्स, जे. सी. 1990, दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स, कैब्रिज :कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

15. सायर, डी. 1924, दी इफैफक्ट ऑप़फ बैलिंगुअलिज्म ऑन इंटेलिजेंस, ब्रिटिश जर्नल ऑप़फ साइकोलॉजी 14:25-38
16. श्रीधर, के.के. 1989, इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुलिज्म,नयी दिल्ली, मनोहर।
17. तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगणद्), भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
18. सिंह, निरंजन कुमार (2008).*माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण*.जयपुर: राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी
19. यूनेस्को, 2003, एजुवेफशन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड, यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।
20. व्योगोत्सकी, एल. एस. 1978, माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑप़फ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस, वैंफब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।
21. 'प्राथमिक शाला में शिक्षक, गिजुभाई-ग्रंथमाला-10', प्रकाशक: मांटेसरी-बाल-शिक्षण-समिति, राजलदेसर (चुरू)
22. इस वेबसाइट को जरूर देखें : http//www.languageindia.com
23. *Kenner, C. (2000) Home Pages: Literacy Links for Bilingual Children. Stoke-on-Trent: Trentham Books.*
24. Dubey, Pramila (2006). *Teaching of English*. Jaipur: Shiksha prakashan
25. Mukharjee, H.D. (2013). *Education for fullness*. Uk: Routledge

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. मातृभाषा के महत्त्व का उल्लेख कीजिए।
2. मातृभाषा शिक्षण के उद्देश्यों का वर्णन करो।
3. "शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए।" इस कथन पर अपने विचार का उल्लेख करो।

इकाई 5 - मानक भाषा के रूप में विद्यालयी भाषा की शक्ति की गतिकी बनाम घर की भाषा या बोली के शक्ति की गतिकी, न्यूनता या कमी का सिद्धांत , निरंतरता या गैर निरंतरता का सिद्धांत

(Power dynamics of the 'Standard' Language as the School Language vs. Home Language or 'Dialects'; (Deficit Theory; Discontinuity Theory)

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मानक भाषा के रूप में विद्यालयी भाषा की शक्ति-गतिकी बनाम घर की भाषा
5.4 मानक भाषा एवं घर के भाषा के मध्य द्वन्द को कम करने में शिक्षक की भूमिका
5.5 निरंतरता एवं गैर निरंतरता का सिद्धांत
5.6 न्यूनता या कमी का सिद्धांत
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
5.10 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

भाषा एक साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों या विचारों को अभिव्यक्त करता है। भाषा जन्मजात नहीं होती है , इसका प्रयोग कहने , लिखने या संकेत के उद्देश्य से किया जाता है। यह सतत विकास के क्रम द्वारा प्राप्त किया गया होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भाषा मानव की सामाजिकता एवं बौद्धिकता के गर्भ से उत्पन्न होता है। इसके द्वारा मानव आज आर्थिक, वैज्ञानिक , राष्ट्रीय सामाजिक एवं अन्तराष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में अपने विचार के आदान- प्रदान में समर्थ हैं। भाषा मनुष्य के लिए एक ध्वनि संकेत की तरह है। इसका विचारों के लिये भी प्रयोग किया जाता है, इसी कारण मनुष्य सबको परख पाता

है। अब यहां एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि क्या निरर्थक शब्द संकेत भी भाषा ही है। इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जा सकता है कि भाषा का प्रयोग सापेक्ष स्तर में लिया जाता है। भाषा समाज सापेक्ष होती है एवं मानव सापेक्ष भी। समाज एवं मानव से विभक्त होकर इसका न कोई महत्व है और न ही कोई अस्तित्व ही। भाषा मानव द्वारा अर्जित एक अनूठी उपलब्धि है। यह अर्जित उपलब्धि पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित सम्वर्धित और परिष्कृत होती रहती है। भाषा के सन्दर्भ में एक उल्लेखनीय बात यह है कि इसके विकास के विभिन्न सिद्धांत एवं आयाम हैं , प्रस्तुत इकाई में हम गतिशील मानक भाषा की शक्ति के साथ- साथ भाषा विकास के दो महत्वपूर्ण सिद्धांत न्यूनता या कमी का सिद्धांत , निरंतरता या गैर निरंतरता का सिद्धांत का अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात आप-

1. निरंतरता एवं गैर निरंतरता सिद्धांत के महत्व को समझ सकेंगे।
2. निरंतरता के सिद्धांत को समझ सकेंगे।
3. न्यूनता या कमी का सिद्धांत के महत्व को समझ सकेंगे।
4. भाषा के शक्ति - गतिकी को समझ पायेंगे।
5. मानक भाषा एवं घर की भाषा सम्बंधित द्वन्द को समझ सकेंगे।

5.3 मानक भाषा के रूप में स्कूल के भाषा की शक्ति- गतिकी बनाम घर की भाषा (Power Dynamics of Standard Languageas the School Language Vs Home Language)

आइये, अब भाषा का मानक रूप किसे कहते हैं इस पर विचार विमर्श किया जाय। किसी भाषा क्षेत्र के पढ़े लिखे और शिष्ट लोग विचार- विनिमय, कार्य व्यापार , शिक्षा, साहित्य, धर्म , राजनीति आदि में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह उस क्षेत्र की मानक (standard) या आदर्श भाषा मानी जाती है। यह भाषा व्याकरण सम्मत होती है तथा इसमें एकरूपता भी पायी जाती है। यही भाषा शिक्षा का माध्यम होती है। सामान्यतः इसी में पात्र पत्रिकाएं भी प्रकाशित होती है। इसका क्षेत्र विकसित होता है। उस सम्बन्धित भाषा क्षेत्र के अन्य भाषा बोलने वाले लोग भी इसी भाषा को बोलने और लिखने का प्रयत्न करते हैं। मानक भाषा का लिखित रूप उसके मौखिक रूप की अपेक्षा अधिक परिष्कृत होता है, परन्तु उसका लिखित रूप रूप उसके मौखिक रूप की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक होता है।

जब बालक अपने विद्यालय के प्रारम्भिक वर्षो में दो या दो से अधिक भाषाओं को समझने की योग्यता विकसित करता है तो वह भाषा को किसी न किसी प्रकार से प्रयोग करने की गहन समझ विकसित कर लेता है। वह भाषा को निखारने के लिए और अधिक अभ्यास करता है, जिसके लिए परिस्थितियाँ उसके शिक्षक द्वारा तैयार करके दी जाती हैं। वह अपनी मातृभाषा और अन्य भाषा में तुलना करता है । शोध से पता चला है कि दो भाषाओं को जानने वाले व्यक्ति में विचारने की क्षमता अधिक होती है। इसके परिमाण स्वरूप वह सूचनाओं के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सकता है।

प्राथमिक शिक्षा का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है बच्चे का भाषा सीख पाना। यह तो सभी मानते हैं। यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण पहलू क्यों है? इसके जवाब में बहुत सारी बडी़ सूची बनाई जा सकती है। भाषा ही बच्चे के लिए स्रोत का काम करती है और वह अभिव्यक्ति का भी औज़ार है। इसी से होकर शिक्षा के अन्य पहलुओं तक बालक की पहुँच हो पाती है विज्ञान (Science), गणित (Maths), सामाजिक अध्ययन (Social Studies) आदि भाषा में ख़ासतौर पर औपचारिक व पुस्तक की भाषा पर पर्याप्त क्षमता हासिल किए बिना समझ पाना संभव ही नहीं है। भाषा के माध्यम से ही बालक विचार का ताना-बाना बुन पाता है, निर्णय के लिए तर्क गढ़ पाता है। यह भूमिका मात्र माध्यम के रूप में नहीं है। अक्सर इस पर विचार करते समय भाषा की भूमिका को समझने में एक ख़ास तरह का एकांगीपन भी आ जाता है। जैसे यह समझा जा सकता है कि भाषा एक साधन है जो इन सब उद्देश्यों के लिए आवश्यक है ऐसा साधन जो हथौड़े की तरह या फिर दीवार पर चढ़ने के लिए उसके साथ खड़ी एक सीढी़ की तरह। जिस प्रकार उद्देश्य छत पर चढ़ना है व सीढ़ी साधन उसी प्रकार भाषा भी एक साधन है, संप्रेषण (Communication) का, विचार कर पाने का, विज्ञान, गणित आदि सीखने, निर्णय ले पाना, आदि का एक साधन है जो हमसे इतर है आरै सबके लिए एक सा ही है। यह बात एक तरह से ठीक है पर अधूरी है असल में जितनी ठीक है उतनी ग़लत भी है। भाषा साधन होने के साथ-साथ बहुत कुछ और भी है यह हमारे व्यक्तित्व व अहम का आधार है, हमारी संस्कृति व समझ का भंडार भी है।

इंसान अपने आस-पास की दुनिया को केवल महसूस ही नहीं करता; वह उसे अपने लिए अर्थ भी देता है। मुझे आसमान में बादल दिखता है इस देखने से मैं जो महसूस करता हूँ, मेरे मस्तिष्क पर जो प्रभाव पड़ता है, मेरे काम पर जो प्रभाव पडता़ है, वह आसमान में अलग-अलग आकार व रंगवाली आकृति मात्र देखने का प्रभाव नहीं है वह मेरे और 'बादल' के बीच और उस समय की मेरी स्थिति के बीच अंतःक्रिया का प्रभाव है। भूमंडलीकरण के दौर में आज एक भाषा का ज्ञान पर्याप्त नहीं है। बच्चे की मातृभाषा दूसरी भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भमिका निभाती है। जो बालक अपनी मातृभाषा की मजबूत नींव के साथ विद्यालय जाता है, उसमें विद्यालयी भाषा की उच्च योग्यता विकसित होती है। भारत में आज भी उच्च शिक्षा मातृभाषा में प्रदान नहीं की जाती है। इससे मातृभाषा अंग्रेजी की तुलना में पिछड़ती जा रही है। लेकिन अंग्रेजी के महत्त्व को नाकारा नहीं जा सकता है। विश्व के दूसरे देशों के व्यक्तियों से संपर्क करने के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता होती है। अंग्रेजी के बिना दूसरे लोगों की भावनाओं, विचारों और अभिव्यक्ति को समझा नहीं जा सकता है।

एक और महत्त्वपूर्ण मसला है भाषा व बोली का जिसे हम मानक भाषा बनाम घर की भाषा का द्वन्द का कह सकते हैं। जिस भी मंच पर भाषा शिक्षण या भाषा के महत्व की बात होती है यह मसला जरूर उठता है। प्रारम्भ में जब बच्चा अपने घर से विद्यालय आता है उस समय वह केवल घर की भाषा ही बोल पाने में सक्षम होता है उस घर की भाषा को बोली का दर्ज़ा भी प्रदान किया गया है । बच्चा तब हीन भावना से ग्रस्त हो जाता है जब उसे यह बात समझ में आती है कि उसकी बोली को दूसरे दर्जे की भाषा समझा जा रहा है । ऐसी परिस्थितियों में वह बच्चा बोलना ही बंद कर देता है और कुंठा का शिकार हो जाता है । इसके साथ ही साथ यह माना जाता है कि भाषा तो वह होती है जिसका अपना साहित्य व व्याकरण होता है, उसकी लिपि होती है, वह मानकीकृत व शुद्ध होती है। बच्चा जो भाषा अपने घर से आता है वह भाषा नहीं है क्योंकि वह तो एक क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा बोली जाती है ,उसका न साहित्य है, न व्याकरण और न लिपि । अतः स्कूल के पहले दिन से ही बच्चों को मानकीकृत और शुद्ध भाषा सिखाने का प्रयास किया जाता है और यदि बच्चे अपनी घरेलू भाषा का प्रयोग विद्यालय में करता है तो उन्हें डाँट दिया जाता है। बच्चे यह समझ नही पाते कि उन्हें डाँटा क्यों जा रहा है? घर में आस-पास परिवेश में हर तरफ वही भाषा बोली जाती है पर स्कलू में अध्यापक के सामने जब वह बोलता है तो उसे गलत कहा जाता है । बात यहीं समाप्त नहीं होती है , जैसा कि हम यह जानते हैं कि भाषा व्यक्ति की संस्कृति व पहचान होती है। बच्चे को अपनी घरेलू भाषा का उपयोग न करने देना उसकी पहचान व संस्कृति पर सीधा प्रहार हातेा है। बार-बार डाँट खाने के कारण जो बच्चे इतनी बातचीत करते हैं , वो धीरे- धीरे बात करना ही बन्द कर देते हैं ।

यदि भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भी भाषा व बोली में कोई फर्क़ नहीं होता । भाषा का भी व्याकरण होता है और बोली का भी। यह बात जरूर है कि बोली का व्याकरण लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होता, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्याकरण हातेा ही नहीं । यही बात साहित्य पर भी लागू होती है । हो सकता है कि कई ''बोलियों (भाषाओं)'' में लिखित साहित्य न हो लेकिन मौखिक साहित्य जरूर होता है। भोजपुरी, अवधी , मैथिली-गढ़वाली , कुमायूंनी जिन्हें हम बोलियाँ कहते हैं उनमें तो बहुत साहित्य उपलब्ध है। इसी तरह यह कहा जाता है कि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है और बोली एक सीमित क्षेत्र में बोली जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. भाषा के मानक रूप से आप क्या समझते हैं ?
2. बोली एवं भाषा के व्याकरण में क्या अंतर है ? स्पष्ट करें ।

5.4 मानक भाषा एवं घर के भाषा के मध्य द्वन्द को कम करने में शिक्षक की भूमिका: (The Role of Teacher in Reducing the Conflict between Standard Language and Home Language)

अब हम यह समझेंगे कि स्कूल की भाषा एवं घर की भाषा में सामंजस्य कैसे स्थापित करेंगे और इसमें शिक्षक की क्या भूमिका है –

1. **बच्चे के पूर्व अर्जित ज्ञान का स्वागत:(Acknowledge the previous knowledge of the child) -** बच्चा जिस क्षेत्र और भाषा से संबंध रखता है उससे संबंधित जानकारी भी अपने साथ लाता है। विद्यालय में आने पर शिक्षक के द्वारा कुछ भी पूछे जाने पर वह अपने पूर्व अर्जित ज्ञान के आधार पर उत्तर बहुत हास्यास्पद और कभी-कभी कुछ सोचने और समझने के लिए बाध्य करने वाला होता है। ऐसे में शिक्षक को उसके पूर्व अर्जित ज्ञान का स्वागत करने हुए ध्यानपूर्वक सुनते और समझते हुए स्नेह एवं दुलार के साथ उसे सीखने का अवसर देना होगा। ऐसा करने बच्चे आपस में एक-दूसरे की भाषा, संस्कार, विचार और मान्यताओं से अनजाने में ही परिचित हो जाते है। इस तरह सरलता से वह बहुत सी बातें कब सीख जाते हैं और भाषा की जो दीवार ज्ञान अर्जन में अडचन बनी हुई थी कब गिर जाती है, पता ही नहीं चलता और भाषा सीखने की क्षमता विकसित होती जाती है।
2. **बच्चे के घर और विद्यालय में बोली जाने वाली भाषा के बीच में जुडाव:(The link between home language and the school language of the child) -**बच्चा विद्यालय अपनी एक विशेष भाषा (क्षेत्रीय विशेषता) के साथ आता है। ऐसे में शिक्षक को उसकी भाषा और विद्यायलय की भाषा (मानक भाषा) के बीच में जुड़ाव करते हुए उसे धीरे-धीरे सहजता से लेते हुए बोधगम्यता और मानकता की ओर ले जाना होता है। बच्चे जो भाषा पहले बोलना शुरू करत हैं (मातृभाषा या प्रांतीय भाषा) उसी में उनकी समझ बनती है और उसी में वे अर्थ निकलते हैं। ये अर्थ बच्चों के लिए क्या मायने रखते हैं इस को समझना होगा। इसके लिए शिक्षक को कुछ अतिरिक्त मेहनत और नयी तैयारी करनी पड़ सकती है लेकिन बच्चों को भाषा सिखाने के लिए यह एक सार्थक कदम हो सकता है। इससे शिक्षक को बच्चों को उनकी घर की बोली में स्वीकृत करते हुए उनको नयी चीजों को सार्थक तरीके से समझाने में मदद मिलेगी। कभी-कभी ऐसी स्थिति भी आती है कि घर की और शिक्षण की भाषा एक ही होती है पंरतु भाषा एर क्षेत्रीय प्रभाव अत्यधिक होता है। ऐसे में पाठ के सदर्भ में व्यवहार और अभ्यास के नियमों का आधारभूत ज्ञान कराकर अभ्यास से मानकता तक पहुँचा जा सकता है।
3. **बच्चे की मातृभाषा को प्रोत्साहन (Encourage the mother tongue of the child) :-** मातृभाषा को महत्व देने से एक विशेष लाभ यह होता है कि बच्चे आपस में एक-दूसरे के क्षेत्र विशेष से परिचित होते हैं और खेल-ही-खेल में सैकडों शब्द सीख जाते है क्योंकि विद्यालय वह स्थान है जहाँ सभी क्षेत्रों के बच्चे आते हैं। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित 22 भाषाएँ हैं। विद्यालय आने वाला प्रत्येक बच्चा इन 22 भाषाओं में से किसी-न-किसी एक भाषा को

समझने वाला होता है। अब यदि दैनिक जरूरत की वस्तुओं के नामों का ही अभ्यास कराया जाए (उदाहरण के लिए-खाना,पहनावा ,त्यौहार) तो इन भाषाओं के कितने ही शब्द बच्चे सीख जाएँगे जो अध्ययन में सरलता का आधार तो बनेगा ही साथ ही इससे अप्रत्यक्ष रूप से अन्य भारतीय भाषाओं का विकास भी होगा। ऐसा वैज्ञानिक तौर पर माना भी जाता है कि बच्चे के पूर्ण ज्ञान, भाषिक क्षमता और मानसिक विकास का सही प्रयोग सामान्यतः मातृ भाषा में ही संभव होता है और बच्चा ज्यादा अच्छी तरह समझ पाता है। इससे भाषिक और सांस्कृतिक दूरी को पाटने में भी मदद मिलेगी। वैसे भी अगर आप किसी से कहें कि आप दो-तीन भाषाएँ सीख लीजिए, तो सरलता से यह बिलकुल संभव नहीं होगा। परन्तु उपरोक्त विधि प्रयोग का आधार बनाया जाए तो यह शायद उतना कठिन नहीं होगा जितना प्रथम स्तर पर होगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि कोई भी भाषा अपनी सहयोगी भाषाओं के साथ ही विकसित होती है। बच्चे कि मातृभाषा को प्रोत्साहन मिलने पर उसे अपने में प्रस्तुत करने का मौका मिलेगा। हो सकता है शुरू में वह गलत उच्चारण करे, उसको आप धीरे-धीरे सही करें। उसको सृजन शक्ति का विकास हो सके, वह अपने को संदर्भ से केंद्रित कर सके और अपनी सृजनात्मकता को विकसित कर सके।

4. **बच्चे की सहज अभिव्यक्ति और शैली कों महत्व (The importance of simple expression and style ofthe child)** – कई बार शिक्षक अभिव्यक्ति की बजाय सही उच्चारण पर अधिक बल देता है, जिससे बच्चा बहुत भयभीत हो जाता है और जीवन भर के लिए उस अभिव्यक्ति क्षमता को खो देता है , जो उसकी अपनी थी साथ ही सहयोग के बिना अर्जित की गयी अभिव्यक्ति करने में कामयाब भी नहीं हो पाता है। यह बच्चे के लिए गंभीर स्थिति होती है। ऐसे में गंभीर स्थिति होती है। ऐसे में शिक्षक को धीरे-धीरे एक-एक करके संशोधन करना होगा, अभ्यास कराना होगा । जहाँ बच्चा अभिव्यक्ति ना कर पाए वहाँ उसे शब्दों का सहारा देकर उसकी अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित करना होगा। जैसे (ष,स,क्ष,श्र) कुछ शब्दों का उच्चारण जो क्षेत्रीय प्रभाव के कारण फर्क होता है।
5. **व्यवहार और अभ्यास के नियमों का ज्ञानः(To make aware withtherules of behaviour and exercise)-** बच्चे को व्याकरण के नियमों के आधार पर भाषा को सही तरीके से सिखाने के प्रयास में शिक्षक को चाहिए कि वे बच्चे को व्याकरण की अवधारणा को विविध प्रकार के पाठों के संदर्भ में पहचानना और उसका उचित प्रयोग करना सिखाएँ।
6. **यंत्रवत् भाषा से बचावः(To save him from mechanical language) -** भाषा को वर्णों और कुछ हद तक अर्थ के आधार पर तो सीखा जा सकता है परंतु गहनता और पूर्णता से नहीं सीखा जा सकता क्योकि यंत्रवत् तरीके से कई शब्दों को उस अर्थ में संप्रेषित नहीं किया जा सकता जिस अर्थ में उन्हें संप्रेषित करना होता है। यदि नियम याद कराने को वाक्य का आधार बनाएँगे तो सीखने में अत्यधिक कठिनाई होगी जिसमें भाषा को सहजता से नहीं सीखा जा सकेगा। यहाँ अनिवार्य रूप से याद रखना होगा कि व्यवहार और अभ्यास के आधारभूत नियमों के अभ्यास के बिना भाषा सीखना संभव नही हो पाएगा।

इस तरह भाषा सिखाने की प्रक्रिया में शिक्षक द्वारा सहजता को आधार बनाकर बच्चे को धीरे-धीरे बेहतर दुनिया और ज्ञान से जोड़ने के लिए प्रारंभ से ही विचरण कराना होगा। यह काम उसके आत्मगौरव और आत्मविश्वास को ठेस पहुँचाए बिना आहिस्ता-आहिस्ता करना होगा। इससे एक लाभ यह भी होगा कि अपनी जड़ों से बिना जुड़ें रहने के कारण मन में अपनी भाषा के प्रति किसी प्रकार की हीन भावना महसूस नहीं होगी और ऐसे बच्चे का प्रांतीय भाषा, मातृभाषा और शिक्षण की भाषा पर पर्याप्त अधिकार होगा।

अभ्यास प्रश्न

3. मातृभाषा के प्रोत्साहन के विभिन्न तरीके कौन कौन से हो सकते हैं ?प्रकाश डालें।
4. बच्चे के घर की भाषा एवं विद्यालय के भाषा में जुडाव कैसे स्थापित कर सकते हैं ?
5. मानक भाषा एवं स्कूल की भाषा में सामंजस्य स्थापित करने में शिक्षक की क्या भूमिका है? स्पष्ट करें।

5.5 निरंतरता एवं गैर निरंतरता का सिद्धांत: (Theory of Continuity and Discontinuity)

मानव प्रजाति में भाषा की उत्पत्ति कई सदियों के लिए विद्वानों के विचार विमर्श का विषय रहा है। इस के बावजूद, मानव भाषा का परम मूल या उम्र पर कोई आम सहमति नहीं बन पायी है। प्रत्यक्ष साक्ष्य के अभाव में इस समस्या का अध्ययन एक कठिन विषय बन गया है। परिणामस्वरूप , भाषा का मूल अध्ययन करने के इच्छुक विद्वानों ऐसे जीवाश्म रिकॉर्ड, पुरातात्विक साक्ष्य , समकालीन भाषा विविधता, मानव भाषा और अन्य जानवरों के बीच मौजूदा संचार की प्रणालियों के बीच भाषा के अधिग्रहण का अध्ययन, और तुलना के रूप में सबूत के द्वारा अन्य प्रकार से अनुमान लगाने की कोशिश करनी चाहिए। कई महानुभावों का तर्क है कि भाषा का उद्भव शायद आधुनिक मानव व्यवहार से संबंधित हैं, लेकिन इस संबंध के निहितार्थ और दिशात्मकता के बारे में थोड़ा संदेह भी है।

अनुभवजन्य सबूत के इस कमी के कारण बहुत से विद्वानों ने इसे गंभीर शोध का विषय नहीं माना है। 1866 में पेरिस के भाषाई सोसायटी (Linguistic Society) इस विषय पर किसी भी मौजूदा या भविष्य की बहस पर प्रतिबंध लगा दिया। यह प्रतिबन्ध बीसवीं सदी की आखिर तक पश्चिमी दुनिया के बहुत से देशों में प्रभावशाली बना रहा है। आज के इस युग भाषा का प्रादुर्भाव कैसे हुआ होगा की बहुत सी परिकल्पनाएं हैं।इस के बावजूद, चार्ल्स डार्विन के सिद्धांत द्वारा एक सौ साल पहले, प्राकृतिक चयन द्वारा भाषा के विकास के विषय पर कुर्सी अटकलों का भी दौर चला। इसके बाद से 1990 के दशक में, भाषाविदों (Linguists), पुरातत्वविदों (Archeologists), मनोवैज्ञानिक (Psychologists), मानवविज्ञानियों ने नए तरीकों के साथ समाधान करने का प्रयास किया है।

मानवीय भाषा की उत्पत्ति (Orgin of human language) एवं बात व्यवहार के माध्यम के रूप में इसे लेंबर्ग द्वारा दो भागों में विभाजित किया गया। पहले भाग के सिद्धांत को निरंतरता का सिद्धांत कहा गया जो कि मूलतः डार्विन के सिद्धांत से प्रभावित सिद्धांत है। दूसरे भाग को गैर निरंतरता का सिद्धांत कहा गया जो इस बात का समर्थन करता था कि मानवीय भाषा को दूसरे जीव जंतुओं की भाषा से तुलना नहीं की जा सकती तथा इसे समझने के लिए मानवीय भाषा का ही अध्ययन करना पडेगा। गैर निरंतरता के सिद्धांत को समझने के लिये केवल भाषा की उत्पति को समझना ही पर्याप्त नहीं है। हालांकि इस बात पर अभी चर्चा एवं विवाद दोनों है कि भाषा ग्रहण करने की क्षमता अन्तर्निहित है या वातावरण केंद्रित। कुछ विद्वानों का यह तर्क है कि इस तरह की क्षमता अन्तर्निहित है क्योंकि चिम्पान्जीयों को मानवीय परिवेश में रखे जाने के बाद भी उनमें भाषा की योग्यता पैदा नहीं हो पाती जबकि एक गूंगे एवं बहरे बच्चे को जब हम मानवीय परिवेश में रखेते है तो भी वह बोलने एवं सुनने की एक जटिल संरचना बना लेता है।

भाषा की उत्पत्ति को निम्न मान्यताओं के आधार पर समझा जा सकता है -

1. " निरंतरता सिद्धांत " ऐसे मान्यताओं पर बने हुए है जिसमें इस बात पर सहमति है कि भाषा एकाएक अस्तित्व में नहीं आयी होगी क्योंकि भाषा की संरचना बहुत ही जटिल होती है। निरंतरता सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि भाषा का प्रादुर्भाव अवश्य ही हमारे पूर्वजों के पहले प्री- भाषाई सिस्टम से विकसित हुआ होगा।
2. गैर निरंतरता सिद्धांत इसके विपरीत होकर अपनी बात कहता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि भाषा जैसी अनूठी विशेषता को हम गैर- मनुष्यों के साथ तुलना नहीं कर सकते। यह सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अवश्य ही इस तरह की योग्यता का विकास मानव विकास के क्रम में ही हुआ होगा।

अभ्यास प्रश्न

6. निरंतरता के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
7. गैर- निरंतरता के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
8. निरंतरता एवं गैर- निरंतरता के सिद्धांत में अंतर स्पष्ट करें।

5.6 न्यूनता या कमी का सिद्धांत (Deficit Theory)

न्यूनता या कमी का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि कोई भी भाषा का एक मानक स्वरुप (Standard Form) होता है। इस मानक स्वरूप के हिसाब से ही किसी लेख या भाषिक टुकड़े की गुणवत्ता को जांचा या परखा जाता है। जैसा कि भाषा का स्वभाव होता है कि उसका प्रवाह सर्वदा कठिनता से सरलता के

तरफ होता है। इसी प्रवाह के कारण भाषा का स्वरुप मानक स्वरूप से दूर हो जाता है। जिस भाषा में इस प्रवाह का आभाव होता है वह भाषा मृतप्राय हो जाती है। कई विद्वानों ने अपने - अपने तरफ से इस न्यूनता को परिभाषित करने की कोशिश की है।

इसे यदि हम जेंडर और भाषा के द्वन्द के रूप में देंखें तो बात ज़्यादा स्पष्ट होगी। जैसा कि नाम से ही यह दृष्टिगोचर है कि न्यूनता या ह्रास का सिद्धांत में पुरुषों की भाषा महिलाओं की भाषा से इत्र देखने की संकल्पना निहित है। यह सिद्धांत इस मान्यता पर आधारित है कि भाषा की संरचना पुरूष केन्द्रित (Male- Centred) है और इसमें महिलाओं के लिए अति न्यून स्थान प्रदान किया गया है। यह मान्यता इस बात पर बल देती है कि पुरुषों की भाषा महिलाओं की भाषा से हर प्रकार से बेहतर एवं श्रेष्ठ है ।साइमन दी बुआ की पुस्तक द सेकेण्ड सेक्स (The Second Sex ,1949) न्यूनता/ ह्रास के सिद्धांत का साहित्य के क्षेत्र में एक श्रेष्ठ नमूना कहा जा सकता है।

आधुनिक भाषा विज्ञान के क्षेत्र में न्यूनता या ह्रास के सिद्धांत का प्रथम नमूना डेनमार्क के वैयाकरण जेस्पर्सन (1922) के कार्य में स्पष्टतः दिखाई देता है । जेस्पर्सन महोदय के अनुसार महिलाओं की बातचीत का पैटर्न महिलाओं के बातचीत के पैटर्न से बिल्कुल इतर होता है। अपने अतिमहत्वपूर्ण पुस्तक "द ग्रामर ऑफ इंग्लिश" (The grammar of English, 1922) के चौथे अध्याय जिसका शीर्षक "The Woman" है में उसने चार महत्वपूर्ण भाषिक विभिन्नता रेखांकित की। ये चारों निम्नलिखित हैं

1. The Verbal Taboo
2. Competing language
3. Conversastional Language
4. Conservative Language

अपनी इसी पुस्तक में आगे चलकर जेस्पर्सन ने बताया कि पुरुष भाषा के प्रयोग में महिलाओं से बेहतर होते हैं। उसने कहा कि महिलायें बहुत ही सीमित शब्दों (Limited Vocabulary)का प्रयोग करती हैं। उनकी बातचीत के दौरान Pretty, Nice, Just, Very and Sweet जैसे क्रिया विशेषणों (Adverb) का प्रयोग आधिक्य में होता है। इसके विपरीत वह यह भी बात कहता है कि महिलायें नए शब्दों का आविष्कार भी करती हैं। आगे चल कर अपनी इसी पुस्तक में उसने यह भी प्रतिपादित भी किया कि महिलायें अपने शब्द प्रयोग में पुरुषों की अपेक्षा अधिक् रूढ़िवादी (Conservative) होती हैं।अन्त में जेस्पर्सन ने महिलाओं के भाषिक दृष्टि से भाषिक तीव्रता के स्थान पर भाषिक मंद होने की मान्यता की पुष्टि की।

उदाहरण के लिए – पुरूष की भाषा को मानक भाषा एवं महिला की भाषा को गैर - मानक भाषा समझा जाता है। जेस्पर्सन के बाद एक अन्य भाषाविज्ञानी जिसका नाम राबिन लैकाफ (Robin Lakoff) था ने 1975 में *Language and Woman's Place* नामक पुस्तक में अपनी इस बात को प्रतिपादित किया है*। अपनी* बात रखते हुए लैकाफ महोदया ने यह बात प्रतिपादित किया है कि चूँकि समाज में महिलाओं का स्थान पुरुषों की अपेक्षा निम्नतर आकाँ गया है इसलिए भाषा पर भी यही बात लागू होती

है। भाषा का स्वभाव भी निरपेक्ष न हो कर पुरूष केन्द्रित हो जाता है। उसने उसी पशिमी धारणा को बल प्रदान किया जिसकी शुरुआत जेस्पर्सन ने किया था। राबिन लैकाफ जो कि एक अमेरिकी भाषाविद था ने एक अतिमहत्वपूर्ण दस्तावेज़ सन 1973 में *Language and Woman's Place* शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ जो कि कालांतर में सन 1975 में एक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक के प्रकाशन को भाषा एवं जेंडर के अध्ययन में एक मील का पत्थर तथा एक नयी सदी का प्रारम्भ माना जाता है। इस पुस्तक का महत्व इसलिए भी ज़्यादा है क्योंकि जेस्पर्सन के कार्य से इतर यह फेमिनिज्म की दूसरी धारा से प्रभावित थी इसलिए यह फेमिनिस्ट लिंग्वीस्ट् का बेहतरीन नमूना भी माना जाता है। वास्तविकता में महिला मुक्ति की क्रान्ति का आह्वान अमेरिका में सन 1970 में हो चुका था। इसमें इसलिए भी लैकाफ के विचारों का महत्व बढ़ जाता है क्योंकि प क्योंकि पहले चल रहे आंदोलन के विचारों को और अधिक बेहतर बनाए जाने में उपयोगी सिद्ध हुआ। लैकाफ के अनुसार चूंकि महिलायें समाज में हाशिए पर रहीं है इसलिए भाषिक रूप से उतनी मजबूत नहीं हो पायी जितनी की पुरूष हैं।

लैकाफ के पुस्तक तीन मुख्य उद्देश्य थे

i. भाषा क्या बता सकती है , लैंगिक असमानता के बारे में जो कि भाषा में मौजूद है।
ii. क्या भाषाविद सामाजिक असमानता को भाषा में सुधार करके ठीक कर सकते हैं।
iii. भाषा और जेंडर पर शोध कार्य को बढ़ावा देना।

अभ्यास प्रश्न

9. न्यूनता या कमी के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ?
10. न्यूनता सिद्धांत को लेकर के लैकाफ महोदय के विचारों को स्पष्ट करें।

5.7 सारांश

भाषा, मानव की सामाजिकता एवं बौधिकता के गर्भ से उत्पन्न होता है। इसके द्वारा मानव आज आर्थिक, वैज्ञानिक , राष्ट्रीय, सामाजिक एवं अंतर्राष्ट्रीय सभी क्षेत्रों में अपने विचार के आदान- प्रदान में समर्थ हैं। भाषा मनुष्य के लिए एक ध्वनि संकेत की तरह है। इसका विचारों के लिये भी प्रयोग किया जाता है इसी कारण मनुष्य सबको परख पाता है। निरंतरता सिद्धांत ऐसे मान्यताओं पर बने हुए है जिसमें इस बात पर सहमति है कि भाषा एका- एक अस्तित्व में नहीं आयी होगी क्योंकि भाषा की संरचना बहुत ही जटिल होती है। निरंतरता सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि भाषा का प्रादुर्भाव अवश्य ही हमारे पूर्वजों के पहले प्री- भाषाई सिस्टम से विकसित हुआ होगा। गैर निरंतरता सिद्धांत इसके विपरीत होकर अपनी बात कहता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि भाषा जैसी अनूठी विशेषता को हम गैर- मनुष्यों के साथ तुलना नहीं कर सकते। यह सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अवश्य ही इस तरह की योग्यता

का विकास मानव विकास के क्रम में ही हुआ होगा। न्यूनता या कमी का सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि कोई भी भाषा का एक मानक स्वरुप होता है। इस मानक स्वरूप के हिसाब से ही किसी लेख या भाषिक टुकड़े की गुणवत्ता को जांचा या परखा जाता है। जैसा कि भाषा का स्वभाव होता है कि उसका प्रवाह सर्वदा कठिनता से सरलता के तरफ होता है। इसी प्रवाह के कारण भाषा का स्वरुप मानक स्वरूप से दूर हो जाता है।

5.8 शब्दावली

1. **निरंतरता सिद्धांत** : निरंतरता सिद्धांत ऐसे मान्यताओं पर बने हुए है जिसमें इस बात पर सहमति है कि भाषा एकाएक अस्तित्व में नहीं आयी होगी क्योंकि भाषा की संरचना बहुत ही जटिल होती है। निरंतरता सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि भाषा का प्रादुर्भाव अवश्य ही हमारे पूर्वजों के पहले प्री- भाषाई सिस्टम से विकसित हुआ होगा।
2. **गैर निरंतरता सिद्धांत :** गैर निरंतरता सिद्धांत इसके विपरीत होकर अपनी बात कहता है। इस सिद्धांत की मान्यता है कि भाषा जैसी अनूठी विशेषता को हम गैर- मनुष्यों के साथ तुलना नहीं कर सकते। यह सिद्धांत इस बात पर भी बल देता है कि अवश्य ही इस तरह की योग्यता का विकास मानव विकास के क्रम में ही हुआ होगा।

5.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, पी. और संजय कुमार 2000 (संपादित), हिंदी देशकाल में
2. चॉम्स्की, एन. 1957, सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स, दी हेग: मौटेन कं.।
3. चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर. लैंग्वेजेस 35.1.26-58
4. चॉम्स्की, एन. 1972, लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।
5. चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्ली: माध्यम बुक्स।
6. चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑफ़ द थ्योरी ऑफ सिनटेक्स, कैंब्रिज : एम. आई. टी. प्रेस।
7. चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर।
8. चॉम्स्की, एन. 1988, लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑफ़ नॉलेज, वैंफब्रिज, मास: एम. आई. टी.।
9. दुआ, एच. आर. 1985, लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।
10. हैबरमास, जे. 1998, ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ कम्युनिवेफशन, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।

11. हैबरमास, जे. 1998, दी फिलॉस्फिकल डिसकोर्स ऑफ मॉडर्निटी, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
12. कुमार, के. 2001, स्कूल की हिंदी, पटना: राजकमल।
13. शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964 -1966, शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
14. नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।
15. पटनायक, डी. पी. 1981, मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुवेफशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. पटनायक, डी. पी. 1986, स्टडी ऑफ लैंग्वेजेज, ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।
17. रिचड्र्स, जे. सी. 1990, दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स, कैब्रिज :कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
18. सायर, डी. 1924, दी इपैफक्ट ऑप़फ बैलिंगुअलिज्म ऑन इंटेलिजेंस, ब्रिटिश जर्नल ऑप़फ साइकोलॉजी 14:25-38
19. श्रीधर, के.के. 1989, इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुलिज्म,नयी दिल्ली, मनोहर।
20. तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगणद्), भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
21. यूनेस्को, 2003, एजुवेफशन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड, यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।
22. वायगोत्सकी, एल. एस. 1978, माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑप़फ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस, वैंफब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।
23. जमील, वी. 1985, रेस्पोंडिंग टू स्टूडेंट राइटिंग, टी. ई. एस. ओ. एल. त्रैमासिक, 19.1
24. इस वेबसाइट को जरूर देखें : http//www.languageindia.com

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मानक भाषा एवं घर के भाषा के द्वन्द को कैसे कम किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिए।
2. निरंतरता सिद्धांत एवं गैर- निरंतरता सिद्धांत में क्या अंतर है स्पष्ट कीजिए।
3. गैर- निरंतरता सिद्धांत के संप्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।
4. कमी या न्यूनता के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 6 - अनुदेशन की भाषा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 अनुदेशन की भाषा
6.4 गृहभाषा
6.5 विद्यालय-भाषा
6.6 अनुदेशन की माध्यम भाषा का चयन
6.6.1 कारण
6.6.2 समस्याएँ
6.6.3 समाधान
6.7 द्वितीय भाषा पाठ को समझने में विद्यार्थियों की कठिनाइयों को सुलझाना
6.8 शब्दावली
6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.10 संदर्भग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने पढ़ा हैं कि भाषा एक विषय ही नही बल्कि शिक्षण का माध्यम भी होती है। भाषा विहीन वातावरण में शिक्षा की प्रक्रिया की कल्पना नही की जा सकती है। भाषा शिक्षा के माध्यम के साथ साथ शिक्षा का कारण भी है। हम जानते है कि शिक्षा चिंतन की प्रक्रिया का अंग है और माध्यम भी है। इस प्रकार शिक्षा और चिंतन अन्योन्याश्रित है। उधर शिक्षा और भाषा दोनो संस्कृति के अभिन्न अंग है जो कि विद्यालय और पाठ्यक्रम की उत्पत्ति को आधार प्रदान करती है। जैसा कि संस्कृतिक संरक्षण, विकास व हस्तांतरण शिक्षा की प्रक्रिया के मूलभूत लक्ष्य हैं। शिक्षा की आवश्यकता य उत्पत्ति का कारण भाषा के उद्भव की प्रक्रिया में समाहित है। यदि भाषा नही होती तो शायद आज शिक्षा की आवश्यकता भी नही पड़ी होती। शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, माध्यम आदि तत्वों की अवधारणा में भाषा की आधारभूत भूमिका है। जिनकी चर्चा हम इससे पूर्व की इकाइयों में कर चुके है।

लेकिन इस इकाई में हम भाषा के एक प्रमुख पहलू जो कि शिक्षा य अनुदेशन के माध्यम के रूप में भाषा का अध्ययन करेंगे। अनुदेशन के माध्यम के चुनाव के क्या कारण है? कौन सी भाषा अनुदेशन के लिए उचित भाषा हो सकती है? कौन कौन सी शक्तियां विद्यालयी भाषा के चयन में निर्णायक होती है? आदि प्रश्नों के उत्तर हम इस इकाई में खोजने की कोशिश करेंगे। इसके आलावा हम उन विधियों व प्रविधियों की चर्चा करेंगे जिनके द्वारा आप अपने विद्यार्थियों को उन पाठों को समझने में आने वाली कठिनाइयों का समधान कर सकेंगे जो पाठ उनकी गृहभाषा य स्थानीय भाषा में नही होते है। गृह भाषा व स्थानीय भाषा को शिक्षा साहित्य में सामान्यतः प्रथम भाषा कहा जाता है। प्रथम भाषा से इतर जो भी भाषा है उसे द्वितीय भाषा कहा जाता है। वैसे बहुभाषाई विद्यालय व समाज में तृतीय व चतुर्थ भाषा का भी अस्तित्व है परंतु किसी भी प्रकार की भ्रांति से बचने के लिए हम यहाँ प्रथम भाषा से इतर पाठ (पाठ्यवस्तु) को द्वितीय भाषा य गैरस्थानीय भाषा पाठ से ही संबोधित करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को को पढ़ने के उपरांत आप;

- अनुदेशन की भाषा की अवधारणा को समझ सकेंगे;
- गृहभाषा की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- विद्यालयी भाषा की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- संदर्भ विशेष में गृहभाषा और विद्यालयी भाषा में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;
- विद्यालय में माध्यम भाषा के चुनाव में कौन-कौन सी शक्तियां अपनी भूमिका अदा करती इसको समझ सकेंगे और स्मालोचना कर सकेगें;
- अध्यापन के समय समुचित माध्यम भाषा का चयन कर सकेंगे;
- द्वितीय भाषा पाठ को समझने में विद्यार्थियों की कठिनाइयों का समाधान कर सकेंगे।

6.3 अनुदेशन की भाषा

अभी तक हमनें शिक्षा में भाषा की भूमिका और शिक्षण की माध्यम के रूप में भाषा का अध्ययन किया है। अनुदेशन शब्द इस इकाई में नया शब्द है। हो सकता है कि आपने इस शब्द को किसी अन्य खंड में पढा हो, नही तो पढ़ेंगे। यद्यपि इस इकाई की विषय वस्तु से अलग है तथापि हम समझ के प्रवाह को बनाये रखने के लिए अनुदेशन के सम्प्रत्यय को पहले समझ लेते है। साधारण शब्दों में अनुदेशन शिक्षण(Teaching) की वृहद प्रक्रिया का एक अंग य प्रकार कहा जा सकता है। संज्ञान रहे कि

अनुदेशन(Instruction) के अलावा अनुबंधन(Conditioning), प्रशिक्षण (Training), और मतशिक्षण (Indoctrination) शिक्षण के प्रारूप य प्रकार कहे जाते है(Mangal & Mangal, 2010)। अनुदेशन का ध्येय विद्यार्थियों में ज्ञान संचार करना और उनकी समझ को बढ़ाना होता है। यदि आप कक्षाकक्ष प्रक्रिया पर थोड़ा ध्यान देंगे तो समझ जायेंगे कि कक्षा शिक्षण का जो प्रारूप है वह मुख्यरूप से अनुदेशन ही है। अतः अनुदेशन शिक्षण का निकटतम अंग है। शिक्षा साहित्य में भी शिक्षण और अनुदेशन शब्दों को एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग कर लिया जाता है, जबतक कि इन शब्दों के अंतर का बोध कराने की आवश्यकता जैसा कोई विशिष्ट संदर्भ न हो। यहाँ इस इकाई में भी हमारा ध्येय विद्यालय में माध्यम भाषा पर चर्चा करना है। अतः हम भी शिक्षण और अनुदेशन शब्दो में से किसी भी शब्द को प्रयोग करते हुए अपनी चर्चा को आगे बढ़ाएँगे। जैसा कि हमने इससे पूर्व पढ़ा है कि भाषा विहीन वातावरण में शिक्षण सम्भव नही है तो हम समझ सकते है कि अनुदेशन कि प्रक्रिया भाषा विशेष पर निर्भर करती है।

अभी तक विभिन्न संदर्भों में हुई चर्चाओं में हमने जाना है कि अनुदेशन का एक मातृ उद्देश्य विद्यार्थियों में समझ का विकास करना होता है। अर्थात बच्चे सीखे इस लिए हम शिक्षक अनुदेशन/शिक्षण की विभिन्न तकनीकियों का प्रशिक्षण प्राप्त करते है। सिर्फ शिक्षण-अधिगम की विधियों, प्रविधियों, सूत्रों की समझ रखने मात्र से हम सफल शिक्षक नही बन सकते है। ये सभी उपकरण हमारे शिक्षण की नौका के शक्तिशाली पतवार हो सकते है पर क्या पानी के बहाव की समझ के बिना क्या हम अच्छे नाविक बन सकते है? भाषा उस जलराशि के समान है जिसपर शिक्षण की, अधिगम की, और चिंतन की नाव चलती है। अतः भाषा तो शिक्षा का आधारभूत तत्व है। इसलिए एक शिक्षक को और विद्यालय व्यवस्था को अनुदेशन की भाषा के चयन में पर्याप्त संवेदनशील, विवेकशील और न्यायसंगत होना चाहिए। शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया में किसी एक भाषा का प्रयोग होना तो तय ही है, पर सबसे जटिल प्रश्न अब यह उठता है कि यह कौन सी भाषा हो सकती है? इस प्रश्न के उत्तर के साथ कई विकल्प है जैसे कि गृह-भाषा, स्थनीय भाषा, विद्यालयी भाषा, प्रशासनिक भाषा, विद्यार्थियों की भाषा, शिक्षक की भाषा, बाजार (व्यवसाय) की भाषा इत्यादि। इन सभी भाषा विकल्पों को दो प्रमुख भागो में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये दो रूप है गृह-भाषा और विद्यालय-भाषा। हम इन दो भाषा रूपों में अपनी चर्चा को केंद्रित करके रखेगे। वैसे एक बात पूर्व में ही समझ ले कि ये कोई भाषा के प्रकार नही है संदर्भ विशेष में ये दो अलग अलग भाषाएँ हो सकती है य एक ही भाषा हो सकती है , य अनेक भाषाएँ भी हो सकती है(बहुभाषाई परिप्रेक्ष्य में)। अब हम इन दोनो गृहभाषा और विद्यालय-भाषा की अवधारणाओं को समझ लेते है।

6.4 गृहभाषा

गृहभाषा शब्द अपने आप में आत्म-व्याख्यात्मक शब्द है। आप समझ सकते हैं कि यह वह भाषा है जो विद्यार्थी के घर में प्रयोग की जाती है। शिक्षा साहित्य में इसे गृह-भाषा, मातृभाषा, प्रथम-भाषा, स्थानीय

भाषा, आस-पड़ोस आदि कई नामों से संबोधित किया जाता है। शिक्षक होने के नाते हमें मातृभाषा की विशेषताओं को जानना जरूरी होता है। यह वह भाषा हैं जिसमें हम (हमारे विद्यार्थी भी) सबसे अधिक अंतर्क्रिया करते हैं, य सबसे अधिक प्रयोग करते हैं। हम इस भाषा में सिर्फ अधिक प्रभावशाली और त्रुटिरहित वक्ता ही नहीं होते हैं बल्कि यह भाषा हमारी पहचान भी होती है। आप अनुभव कर सकते हैं कि जब कभी आप उत्तराखंड के बाहर कि यात्रा पर होते हैं उदाहरणार्थ बस में होते हैं, ट्रेन में होते हैं, य बाजार में होते हैं और यात्रा के दौरान आप किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो आपकी गढ़वाली या कुमाऊनी भाषा का प्रयोग करता है, तब आप उसकी तरफ एक सहज खिंचाव महसूस करते हैं। उसे जानने की कोशिश करते हैं। यदि आप को समय मिलता है तो आप उससे बातचीत भी करना चाहते हैं।अर्थात आप सहज ही किसी को भाषा प्रयोग से ही पहिचान लेते है। आप अपनी मातृ-भाषा में बात करते समय कभी थकान महसूस नहीं करते है, जबतक कि थकान का कोई अन्य कारण न हो। गृह-भाषा का संबंध किसी बहुसंख्यक या अल्पसंख्यक भाषा से नहीं है। यह सिर्फ कुछ लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा हो सकती है और यह हजारों करोड़ों लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषा भी हो सकती है। गृह भाषा का संबंध स्थान विशेष से भी नहीं होता है उत्तराखंड के किसी स्थान पर बोली जाने वाली भाषा उत्तराखंड के उन लोगों के लिए भी मातृ-भाषा/गृह-भाषा ही कहलाएगी जो उत्तराखंड से बाहर किसी अन्य राज्य य अन्य देश में रहने लगे है। अतः किसी क्षेत्र विशेष में शिक्षण करने से आपको यह नही मान लेना चाहिए कि सिर्फ स्थानीय भाषा-भाषी परिवारों के बच्चे ही आपकी कक्षा में आयेंगे। आत्मव्याख्यात्मक होते हुए भी गृहभाषा की अवधारणा संदर्भ विशेष में जटिल हो जाती है। कभी कभी विद्यार्थियों की गृहभाषा को पहिचानना बहुत ही कठिन कार्य हो जाता है। यहाँ हम गृह-भाषा की कुछ विशेषताओं को रेखांकित करते हैं;

- भाषा बच्चों के घर में प्रयोग की जाने वाली भाषा है;
- यह वह भाषा है जो व्यक्ति की सामाजिक-सांस्कृतिक पहिचान बन जाती है;
- इस भाषा में हमारे स्वरयंत्र (भाषा के प्रयोग में आने वाले यंत्र) बड़ी सहजता से कार्य करते हैं;
- यह अनौपचारिक भाषा होती है जिसके व्याकरण की चिंता प्रयोग के समय हमें नहीं करनी होती है;
- प्रशासनिक भाषा की तुलना में गृह-भाषा बहुत ही सहज बोलचाल की और दैनिक वार्तालाप की प्रकृति वाली भाषा होती है;
- यह वह भाषा है जिसे बच्चा सर्वाधिक जानता है;
- इस भाषा में विद्यार्थी के सीखने की सर्वाधिक संभावनाएँ होती है;
- यह समझ का उत्तम माध्यम कही जाती है;
- इसे प्रथम-भाषा य मातृभाषा कहा जाता है। क्योंकि हमारा प्रथम परिचय इस भाषा से अपनी माँ के साथ (प्रथम संबंधियों के साथ भी) प्रथम भाषिक-क्रियाकलापों में/के द्वारा होता है।

जब बच्चा हमारे सामने कक्षा में आता है तब वह सामाजिक वार्तालाप के मूलभूत कौशलों में सक्षम होता हैं। हम शिक्षकों को नहीं भूलना चाहिए कि विद्यालय पर्यावरण से बाहर भी समाजीकरण के माध्यम से बच्चों का बौद्धिक-सामाजिक विकास होता है। बच्चे में प्रथम भाषा के माध्यम से सामाजिक वार्तालाप की क्षमताएं विकसित होती हैं। सामाजिक अन्तरक्रिया से भाषा का और भाषा के माध्यम से सामाजिक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक आदि पक्षों के विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। बच्चों में इस भाषाई विकास का उनकी आगे की शिक्षा में बड़ा महत्वपूर्ण उपयोग हो सकता है। हम शिक्षक बच्चों की गृह-भाषा का प्रयोग बच्चों को समझने में तथा उनको समझाने में, दोनों ही प्रकार से कर सकते है। यदि बच्चों की गृह-भाषा हमारी भाषा य विद्यालय की भाषा से अलग होती है तब भी हमें इसके प्रति उपेक्षा का व्यवहार नहीं करना चाहिए। हम जानते हैं कि भाषा मानसिक, संवेगात्मक, व सामाजिक विकास की आधारशिला होती है। विद्यालय पूर्व और विद्यालय प्रवेश के उपरांत भी बच्चे का कुछ विकास इन सभी क्षेत्रों में सामाजिक वातावरण में रहते हुए हो रहा होता है। यदि हम बच्चे पर विद्यालय की भाषा आरोपित करते हैं और उसकी गृह-भाषा के प्रयोग को अवरुद्ध कर देते हैं तो यह उसी प्रकार होगा कि हम अपने पास के सैकड़ो सिक्कों को फेंककर किसी एक सिक्के की खोज में निकल पड़े।

6.5 विद्यालय-भाषा

विद्यालय भाषा का मुख्य प्रयोग विद्यालय के परिसर में शिक्षकों और बच्चों के बीच वार्तालाप, विद्यार्थियों के मध्य आपसी वार्तालाप और विद्यार्थी समूहों में वार्तालाप के माध्यम के रूप में होता है। विद्यालय भाषा किसी भी शिक्षा व्यवस्था की रीड होती है, क्योंकि संपूर्ण शैक्षिक वातावरण विद्यालय भाषा पर निर्भर करता है। यह विद्यालय भाषा विद्या-भवन में वातायन की तरह कार्य करती है। इससे पूर्व की इकाई में आप पढ़ चुके है कि भाषा विहीन वातावरण में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया संभव नहीं है। विद्यालय का संचलन भाषा पर उसी प्रकार निर्भर करता है जैसे कि हमारा जीवन हमारी धमनियों मे रक्त के प्रवाह पर निर्भर करता है। अतः इस बात से आप समझ सकते है कि एक शुद्ध, समर्थ और संपन्न भाषा विद्यालय के लिए अधिक उपयोगी होती है।

विद्यालय वह स्थान है जहां विभिन्न परिवारों, समुदायों और संस्कृतियों के बच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिए आते हैं, और ये बच्चे अपनी विभिन्न भाषाओं के साथ आते हैं इन बच्चों की भाषाएं स्कूल की भाषा से साम्य भी रख सकती हैं और भिन्न भी हो सकती हैं। वर्तमान के बहुभाषिक/बहुसांस्कृतिक वातावरण में सभी बच्चों की भाषाएं विद्यालय की भाषा से साम्य रखें ऐसा संभव नहीं है। कोई भी विद्यालय व्यवस्था एक य दो भाषाओं को ही अपनी माध्यम भाषा के रूप में चुन सकती है। भाषा सिर्फ व्यक्ति की ही पहचान नहीं होती है यह विद्यालय की भी पहचान होती है। कोई भी विद्यालय हो किसी भी प्रकार का हो उसकी एक प्रमुख माध्यम भाषा तो होती ही है जिसे हम विद्यालय-भाषा कहते हैं। आप देख सकते हैं कि विद्यालयों का मूल्यांकन उनकी माध्यम-भाषा के आधार पर हो रहा है। कुछ विद्यालय सिर्फ अंग्रेजी माध्यम के नाम पर ही अधिक शिक्षण-शुल्क प्राप्त करते हैं। सरकारी विद्यालयों में माध्यम के रूप

में प्रायः राज्य की प्रशासनिक भाषा ही होती है। विद्यालय-भाषा पाठ्यपुस्तकों में, विद्यालय सूचनाओं में (सूचनापट्ट पर), परीक्षाओं में, कक्षा-कक्ष अंतर्क्रिया में, शिक्षकों के निर्देशन इत्यादि विद्यालयी व्यवहारों में प्रयोग होती है। इसे हम अकादमिक भाषा भी कहते हैं। विद्यालय भाषा काफी औपचारिक भाषा होती है। इसका वाक्य-विन्यास शब्द प्रयोग दैनिक बोलचाल की भाषा से अलग होता है। हिंदी गृह-भाषा के रूप में और हिंदी विद्यालय भाषा के रूप में थोड़ा अंतर हो जाता है। विद्यालय में प्रयोग की जाने वाली हिंदी एक मानक हिंदी होती है। एक ही विद्यालय के विभिन्न शिक्षकों में आप अनुदेशन की भाषा का अंतर देख सकते है। कभी-कभी तो देखा गया है कि शिक्षकों द्वारा प्रयुक्त हिंदी मानक से इतर और इतनी अधिक दुरूह हो जाती है कि बच्चे शिक्षकों की बातों को समझने के लिए मानसिक संघर्ष करते रह जाते हैं। हम शिक्षकों को ज्ञान रहना चाहिए कि यदि बच्चे हमारी भाषा ही नहीं समझ पा रहे हैं तो हमारे कक्षा में सभी क्रियाकलाप व्यर्थ ही साबित होंगे। अतः कक्षा में प्रयुक्त अनुदेशन की भाषा का चयन बहुत ही सावधानी से बच्चों के संज्ञानात्मक स्तर के अनुरूप करना चाहिए।

6.6 अनुदेशन की माध्यम भाषा का चयन

विद्यालय में अनुदेशन की भाषा का चयन करना अत्यधिक जटिल प्रक्रिया है। क्योंकि अनुदेशन की भाषा के चयन के भिन्न-भिन्न आधार हो सकते है जिनमें से मानवीय अधिकार, संवैधानिक अधिकार, सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, आर्थिक परिप्रेक्ष्य आदि प्रमुख है। इसके आलावा भाषाई समानता का मुद्दा भी सामने आता है जो कि अत्यधिक जटिल है जिसकी चर्चा इस इकाई की विषयवस्तु के क्षेत्र से बाहर की बात है। शिक्षक होने के नाते हमे इतना याद रखना जरूरी है की विश्व की विभिन्न भाषाओं में असमानता तो है पर यह असमानता भाषा की संरचना और प्रणाली के स्तर पर ही है; कार्यात्मक स्तर पर सभी भाषाएँ समान है। अर्थात कोई भी भाषा अपने परिवेश विशेष में माध्यम भाषा का कार्य करने में सक्षम होती है। भाषाविज्ञान में हुए शोधों से यह सिद्ध हो चुका है कि सभी भाषाएँ जिस किसी संस्कृति विशेष में वे प्रयोग की जाती है उस संस्कृति में संप्रेषण के लिए सक्षम और अधिक व्यवहारिक माध्यम होती है। कुछ मायनों में स्थानीय भाषाएँ अधिक सक्षम भी कही जा सकती है। उदाहरण के लिए आप कोई ऐसी वनस्पति को ले जो सिर्फ आपके उत्तराखंड में पाई जाती हो, उस वनस्पति का नाम तथा उसके गुणों का वर्णन करने की क्षमता जितनी आपकी स्थानीय भाषा में होगी उतनी विश्व की अन्य भाषाओं में नही होगी। वैसे किसी भी भाषा को आंतरिक रूप से कम य अधिक सम्पन्न/उर्वर नही कहा जा सकता है (Coulmas, 1991)। जब यह बात सिद्ध है कि विश्व की सभी भाषाएँ किसी पदार्थ, और विचार को व्यक्त करने में सक्षम है तब हम शिक्षकों का और शिक्षण संस्थाओं का किसी एक भाषा पर विशेष आग्रह क्यों होता है? इसका क्या कारण है कि अविभावक और विद्यार्थी के द्वारा किसी एक भाषा (उदाहरणार्थ अंग्रेजी) माध्यम की माँग क्यों रहती है? ये प्रश्न हमको विद्यालय-भाषा चयन के कारणों की समीक्षा के लिए प्रेरित करते है। आइये अब हम भाषा चयन के कारणों पर चर्चा करते है।

क. **कारण:** किसी विशेष भाषा के प्रति अधिक लगाव होना य उसको शैक्षिक संस्थाओं में विशेष महत्व दिया जाना एक जटिल पहलू है। हम इसका एक रेखीय कार्य-कारण सम्बंध सिद्ध नही कर सकते है। भाषा असमानता के पीछे विभिन्न राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक आदि शक्तियां सक्रिय होती है, जिनकी चर्चा अग्रलिखित बिन्दुओं में की गई है: –

- आपने पिछली इकाई में पढ़ा ही है कि आर्थिक गतिविधियों का य बाजार का भाषा के विकास पर प्रभाव पड़ता है। गाँव-गाँव में अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का बढ़ता हुआ प्रचलन आर्थिक जगत की भाषाई माँग का द्योतक है। अँग्रेजी के उदाहरण के अलावा भी भाषा प्रयोग में बाजार के प्रभाव का एक व्यवहारिक उदाहरण अंतर्राष्ट्रीय कंम्पनियों द्वारा क्षेत्रीय भाषाओं में सेवा केंद्रों को खोलने का है। भारत में अंग्रेजों के समय से ही अंग्रेजी व्यावसायिक और प्रशासनिक भाषा का दर्जा हसिल कर चुकी थी। स्वतंत्रता के उपरांत भी अंग्रेजी का अंतरराष्ट्रीय बाजार पर प्रभाव होने के कारण इसको पूर्णतया छोड़ा नही जा सकता। पुनः उदारीकरण और वैश्वीकरण के दौर में अंग्रेजी भाषा में निपुण कर्मिकों की माँग बड़ गई है। सभी व्यवसायिक (Professional) पाठ्यक्रमों में और कुछ संस्थानों में गैर व्यवसायिक पाठ्यक्रमों में भी सम्प्रेषणात्मक अंग्रेजी की कक्षाओं का आयोजन किया जाने लगा है। आज हमारे देश के लगभग सभी राज्यों के व्यावसायिक शिक्षा संस्थानों में माध्यम भाषा के रूप में अँग्रेजी को ही अपनाया जाता है।
- भाषा पर राजनीतिक निर्णयों का भी असर पढ़ता है। आपको याद होगा की 90 के दशक में अविभाजित उत्तप्रदेश(उत्तराखंड को मिलाकर) के मुख्यमंत्री मुलयम सिंह जी का हिंदी के प्रति विशेष राजनैतिक लगाव था जिसके कारण वे अंग्रेजी को विद्यालयों में, लोक सेवा आयोग की परीक्षाओं में वैकल्पिक विषय का स्थान ही दिए थे। जबकि कालांतर में केंद्र सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय ज्ञान आयोग अंग्रेजी के अध्ययन को कक्षा एक (प्रथम) से प्रारम्भ करने की संस्तुति कर्ता है (NKC, 2009)। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी संविधान के अनुच्छेद 343 के द्वारा अंग्रेजी को सिर्फ पंद्रह वर्ष के लिए प्राशासनिक भाषा का दर्जा दिया था। आशा थी कि तबतक हिंदी पूर्ण रूप से इस कार्य के लिए सक्षम हो जायेगी। लेकिन प्रशासनिक भाषा अधिनियम, 1963 के द्वारा अंग्रेजी को केंद्र स्तर पर सह-प्रशासनिक भाषा के रूप में स्थायी स्थान दे दिया गया। इस प्रकार अंग्रेजी के साथ अब दो शक्तियां राजनैतिक और आर्थिक जुड़ गई जिसका असर शिक्षण संस्थानों में अंग्रेजी के प्रयोग और पठन-पाठन पर सकारात्मक रूप से पड़ा है। राजनीतिक इच्छाशक्ति का यह असर होता है कि पूरे भारत में सिर्फ तमिलनाडू ही एक ऐसा राज्य है जहां एक भी नवोदय विद्यालय नही है। क्योंकि इन विद्यालयों में अनिवार्य रूप से त्रिभाषा-सूत्र का अनुगमन किया जाता है, और तमिलनाडू इस सूत्र को नही मानता है। इस सूत्र को ना मानने का एक कारण तमिल भाषा से लगाव के साथ साथ हिन्दी भाषा के विरोध की राजनीति भी है।

- किसी भाषा के मानविकी, सामजिक, तकनीकी, वैज्ञानिक साहित्य की सम्पन्नता भी उस भाषा के शैक्षिक व सामाजिक स्थान का निर्धारण करती है। सन 1835 में मैकाले ने भी इसी आधार पर अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों को वित्तीय सहायता देने की संस्तुति की थी। यद्यपि यह आज सिद्ध हो चुका है कि सभी भाषाएँ सम्प्रेषण के लिए समान रूप से सक्षम होती है तथापि विद्यालयी और प्रशासनिक भाषा के चयन में यह एक प्रमुख तर्क है कि अंग्रेजी भाषा अधिक सम्पन्न भाषा है। इसके लिए स्थानीय भाषा के समर्थकों, शिक्षकों और लेखकों की जिम्मेदारी बनती है कि वे अपनी भाषा को अंतर्राष्ट्रीय स्तर की भाषाओं के समान सम्पन्न बनाये जिससे कि बच्चों को मातृभाषा माध्यम से शिक्षा शुलभ हो सके।
- किसी भाषा के माध्यम भाषा के रूप में प्रयोग के कुछ वैधानिक कारण भी होते है। हमारे संविधान में अनुच्छेद 350A के माध्यम से प्रावधान है कि भाषाई अल्पसंख्यकों के बच्चों की प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा के लिए अनुदेशन का माध्यम बच्चों की मातृभाषा ही हो(Govt. of India, 2007)। पुनः शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 29(2f) में प्रावधान किया गया है कि जहां तक व्यवहार में सम्भव हो अनुदेशन की भाषा बच्चों की मातृ-भाषा ही हो(Govt. of India, 2009)। इससे पूर्व भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी मातृ-भाषा में अनुदेशन पर जोर दिया गया है (NCERT, 2005, p. 37)।

ख. **समस्याएँ:** अनुदेशन की भाषा के निर्धारण में अनेकानेक समस्याएँ आती है। यह हम जानते है कि कोई भी विद्यालय, प्रशासन इकाई य सरकार कुछ निश्चित भाषाओं में सुगमता से नियमित कार्य सम्पादन कर सकती है। द्विभाषी विद्यालय तो मिल जाते है पर बहुभाषी विद्यालय की कल्पना ही की जा सकती है। सभी बच्चों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा उपलब्ध कराना किसी एक विद्यालय के अंदर ही सुनिश्चित करना सम्भव नही है। परिणामत: बच्चों की मातृ-भाषा में शिक्षा के अवसर उप्लब्ध न होने से य तो बच्चे स्कूल छोड़ देते है य असफल हो जाते है। आज भी विश्व में पांच से सात करोण के बीच ऐसे बच्चे है जो विद्यालय से वंचित है (Ball, 2014)। बोलना बच्चों की स्वाभाविक क्रिया है पर विद्यालय का भाषाई वातवरण अलग होने से बच्चे अक्सर शांत रहने लगते है। इस दुर्घटना में हम शिक्षकों का भी बड़ा योगदान रहता है। देखा गया है कि जब कभी बच्चे आपनी मातृभाषा का प्रयोग कक्षा में करते है तो शिक्षकों का अग्रह रहता है कि वे विद्यालयी भाषा का प्रयोग ही करें। कुछ गैर-शासकीय अंग्रेजी माध्यम विद्यालयों में तो अर्थदण्ड भी लिया जाता है। जबकि सरकारी विद्यालयों में राज्य की प्रशासनिक भाषा ही विद्यालय की माध्यम भाषा होती है। सरकार की यह एक परिसीमा भी कही जा सकती है और जरूरत भी। कोई राज्य अपने क्षेत्र विशेष में बोली जाने वाली सभी भाषाओं में शिक्षा उपलब्ध नहीं करा सकता है। इनमें से अधिकतर तो उपभाषाएँ ही होती है जैसे गढ़वाली, भोजपुरी, बुंदेलखंडी आदि। इन उपभाषों में पर्याप्त शब्दिक और शैलीगत अंतर होता है जैसे उत्तर प्रदेश के भोजपुरी क्षेत्र के ग्रामीण बच्चों को विशेष प्रयत्न के द्वारा विद्यालय

में प्रयोग की जाने वाली हिंदी भाषा सीखनी पड़ती है क्योंकि अभी तक भोजपुरी भाषा को एक अलग पूर्ण मानक भाषा का दर्जा नही मिला है। कुछ ऐसी स्थिति गढवाल और कुमाऊं क्षेत्र के बच्चों के साथ भी होती है।

हमने पढा भी है कि सबसें बेहतर अधिगम मातृभाषा के माध्यम से ही होता है। आज विभिन्न शोधों से सिद्ध हो चुका है कि विशेष रूप से प्राथमिक स्तर पर प्रथम भाषा साक्षरता और अधिगम के लिए सबसे बेहतर विकल्प होती है (UNESCO, 2008)। अतः जब हम प्रथम भाषा/गृहभाषा को विद्यालय में रोक देते है तो हम सीखने के अवसरों कम कर देते है। बच्चों के सीखने में कठिनाइयों को बढ़ाते है न कि उनका समाधान करते है। इस प्रकार हम शिक्षक अपनी मूल जिम्मेदारी जो कि बच्चो कि अधिगम समस्याओं का समाधान है उससे भटक जाते है। उधर दूसरी ओर हम बच्चों में हीन भावना का विकास करते है। आप सोच रहे होंगे कैसे? हमने पढ़ा है कि भाषा व्यक्ति की पहिचान होती है। यह गृहभाषा ही होती है जिसमें हमरी अस्मिता, संस्मरण, संस्कार आदि, अर्थात सम्पूर्ण संस्कृति निहित होती है। जब हम बच्चे की गृहभाषा को मिटाने की कोशिश करते है तब हम उसकी पहिचान य आत्म-सम्प्रत्यय (Self-concept) के भाव में हस्तकक्षेप करते है (NCERT, 2005, p. 36)।

ग. <u>समाधान:</u> अभी तक की चर्चा से कुछ बातें सामने आती है कि वैधानिक नियम है कि बच्चों की शिक्षा मातृभाषा में ही होनी चाहिए पर प्रशासन की यह सीमा है कि सभी बच्चों विभिन्न मातृभाषाओं में विद्यालय नही चलाये जा सकते है। इसका समाधान क्या हो सकता है आइये इसपर चर्चा करते है।

- आज बढ़ते बहुभाषिक/बहुसांस्कृतिक वातवरण में एक ही विद्यालय में विभिन्न भाषाई पृष्ठभूमियों से बच्चे आते है। ऐसे में उन्हे उनकी मातृभाषा में अनुदेशित करना एक जटिल समस्या है। लेकिन यह विद्यालय प्रशासन के स्तर की समस्या है। यदि हम शिक्षक बच्चों की मातृभाषा का ज्ञान रखते है और उनकी समझ के खातिर उसका प्रयोग करते है तो यह एक सकारात्मक हस्तकक्षेप होगी।
- हम अनुदेशन की निश्चित भाषा से परेय जाकर अपना शिक्षण कार्य को समपन्न कर सकते है। यदि हम बच्चों की भाषा को नही भी जानते है तब भी हमें उनकी भाषा का आदर करना चाहिए। इसके गम्भीर मनो-सामाजिक सकारात्मक प्रभाव होते है। हम कक्षाकक्ष के अंदर सत्र के प्रारंभ में य कभी कभी विशेष भावों को व्यक्त करने में बच्चों को उनकी अपनी भाषा में बोलने का अवसर दे सकते है। ऐसी स्थिति में शिक्षक उनकी भाषा को समझने की कोशिश कर सकते है; य किसी द्विभाषी बच्चे से उस बच्चे के शब्दों का भावार्थ पूछ सकते है। क्योकि हमारा उद्देश्य बच्चों को समझना भी है और उनको बिना समझे हम उनको पढ़ा तो नही सकते। इस तरह की उदार प्रवृत्ति का शिक्षा की गुणवत्ता पर सार्थक असर पड़ता है।

- अक्सर देखा गया है कि शिक्षक पुस्तकों में वर्णित शिक्षणशास्त्र का अनुगमन करते है। जबकि यह विषय स्वयं में अत्यधिक गत्यात्मक (Dynamic) है। शिक्षकों को चाहिए कि वे अपने परिवेश के अनुरूप अपनी शिक्षण पद्धति का विकास करें। इसके लिए शिक्षकों का शोध-उन्मुख और नवाचारी होना जरूरी होना चाहिए। आप इस कार्यक्रम (B. Ed.) की पाठ्यचर्या के अन्य खंडों में शैक्षिक नवाचार और क्रियात्मक अनुसंधान को पढेगें ही। अतः यहाँ सिर्फ इनके प्रयोग के लिए स्मरण कराया जा रहा है।
- पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र(Translanguaging-Pedagogy) की विचारधारा बहुभाषिक विद्यालयों में भाषा प्रयोग से सम्बन्धित हमारे संदेहों का समाधान कर सकती है। यह विचाधारा कक्षा शिक्षण में भाषा उदारता और किसी एक माध्यम-भाषा पर निर्भरता से मुक्ति में विश्वास करती है। हम शिक्षकों को अपने शिक्षण में पारा-भाषिक होना चाहिए जिससे कि बच्चे अपनी अमूर्त चिंतन क्षमताओं को कक्षा में व्यक्त कारने में सक्षम हो सके। इस विचारधार के अनुसार एक उदाहरण: आप सामजिक विषय य विज्ञान के शिक्षक है और आप हिन्दी य अँग्रेजी भाषा में विद्यार्थियों से प्रश्न करते है, बच्चे अपके प्रश्न को समझ जाते है, वे उसका सही उत्तर भी सोच लेते है पर उसको व्यक्त करने के लिए उनके पास पर्याप्त शब्द हिंदी य अंग्रेजी भाषा में नही है। यहाँ हमारा उद्देश्य तो बच्चों को विषय ज्ञान कराना है, जो कि पूरा हो रहा है, तो क्यों न हम बच्चो को उनकी अपनी मातृभाषा- गढ़वाली, कुमाउनी आदि में उत्तर देने की स्वतन्त्रता दें।

अभ्यास प्रश्न

1. शिक्षण के प्रकार कौन से है?
2. सन 1835 में किसने अंग्रेजी भाषा माध्यम शिक्षा को प्रश्रय दिया?
3. अनुदेशन के लिए सबसे उत्तम माध्यम कौन सी भाषा होती है?
4. भारतीय संविधान के किस अनुच्छेद में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की बात कही गई है?
5. पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र क्या है?
6. मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ना होने पर कौन सी समस्याएँ आ सकती है?

6.7 द्वितीय भाषा पाठ को समझने में विद्यार्थियों की कठिनाइयों को सुलझाना

पठन (Reading) एक महत्वपूर्ण कौशल है जो शिक्षा के प्रथम तल (साक्षरता स्तर) से शिखर तक (विश्वविद्यालय शिक्षा) तक विद्यार्थी और शिक्षक दोनों की गुणवत्ता का निर्धारण करता है। शायद इसी कारण से 16वी शदी के प्रसिद्ध निबंधकार बेकन ने अपने अंग्रेजी भाषा के निबंध 'ऑफ स्टडीज'(Of

Studies) में लिखा है कि अध्ययन एक व्यक्ति को पूर्ण बनाता है ("Reading maketh a full man.....")। पाठक विभिन्न अलग-अलग उद्देश्यों के लिए द्वितीय भाषा य विदेशी भाषा की पाठ्यवस्तु को पढ़ते हैं, जैसे कि सूचना प्राप्त करने, जीवकोपार्जन, आनन्द, अध्ययन (उपाधि/डिग्री प्राप्त करने) के लिए, संवाद के लिए इत्यादि। किसी भी विद्यालय में किसी गैर-स्थानीय य विदेशी भाषा का शिक्षण के लिए चयन उस भाषा से जुड़े विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भाषाई लाभों को देखते हुए किया जाता है। अतः कई बार द्वितीय-भाषा जो कि हमारी गृहभाषा नही होती है की विषयवस्तु को समझना एक आवश्यकता बन जाती है। साथ ही यह हम भलीभाति जानते है कि द्वितीय भाषा के पाठ को समझना तुलनात्मकरूप से कठिन होता है। अतेव हम शिक्षकों की जिम्मेदारी बनती है कि हम इस तथ्य को समझे और अपने विद्यार्थियों की गैर-स्थानीय भाषा पाठ को समझने में कठिनाइयों का निराकरण करें। इस इकाई में अभी तक हमने 'अनुदेशन की भाषा' पर चर्चा की है, अब इस भाग में हम 'भाषा(पठन/Reading) के लिए अनुदेशन की चर्चा करेंगे'। एक प्रश्न आपके सामने रखता हूँ;

जब हम शिक्षक भाषा का शिक्षण करते हैं तो हम क्या सिखाते हैं?

उत्तर बहुत ही सरल है। भाषा के चार आधारभूत तत्व या कौशल सिखाते हैं, जिन्हें सुनना, बोलना, पढ़ना, और लिखना (Listening, Speaking, Reading & Writing) कहते हैं। इन चारों भाषा कौशलों को अलग- अलग नहीं किया जा सकता है। एक का शिक्षण और विकास दूसरे के विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। पठन (Reading) कौशल को द्वितीय भाषा, विशेष रुप से अंग्रेजी सीखने में विशेषरूप से लाभकारी पाया गया है। एक शिक्षा अधिकारी व शिक्षक-प्रशिक्षक डॉ० वेस्ट (Dr. West) जिन्होंने अंग्रेजी शासनकाल में पूर्वी भारत (बांगलादेश, असम आदि क्षेत्रों को मिलाकर) में सर्वेक्षण किए थे, ने माना है कि भारतीय विद्यार्थी पठन कौशल में जल्दी निपुणता प्राप्त करते हैं। यह पठन में निपुणता आगे चलकर लेखन और बोलने के कौशलों में आसानी से रूपांतरित हो जाती है। उनके अनुसार पठन सीखने की आरंभिक अवस्था है (Dr. West, 1960)। अतः पठन कौशल के लिए अनुदेशन भाषा-विकास और सभी विषयों में विद्यार्थोयों की समझ को बढ़ाने के लिए अनिवार्य शर्त है।
पढ़ने के कई प्रकार हो सकते है जैसे कि गहन (Intensive), व्यापक(Extensive), क्रमवीक्षण (Scanning), वेगवीक्षण(Skimming), सक्रिय(Active), निष्क्रिय(Passive) पठन आदि। गहन व्यापक, क्रमवीक्षण, वेगवीक्षण आदि पठन के प्रकार के साथ साथ पठन की रणनीतियां भी कहीं जा सकती हैं। जिनका प्रयोग करके हम एक अच्छे सक्रिय पाठक हो सकते हैं। हमें एक बात और याद रखनी है कि द्वितीय भाषा की विषयवस्तु के पठन य अध्ययन का परिप्रेक्ष्य प्रथम भाषा से अलग होता है। यह आप स्वयं के अनुभवों को याद करके समझ सकते हैं। अपनी स्थानीय भाषा से अलग भाषा के मूल-पाठ (Text) को पढ़ने में विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की कठिनाइयां होती हैं और साथ ही इसके अध्ययन के लिए पृथक पठन रणनीतियां भी होती हैं। हम शिक्षकों को विद्यार्थियों की कठिनाइयों का निराकरण करना होता है जिसके लिए हमें स्वयं इन कठिनाइयों की जानकारी, कारणों, निराकरणों के साथ साथ

द्वितीय भाषा पाठ की समझ के संदर्भों आदि की जानकारी भी होनी चाहिए। आइये हम इन सब बिन्दुओं पर बिन्दुवार ढंग से चर्चा कराते है: –

1. यहाँ बात एक ऐसी भाषा के पाठ को समझने की है जो विद्यार्थियों की संस्कृति और वातावरण से अलग है। उस भाषा के संदर्भ बच्चों के समझ के बाहर हो सकते हैं। अतः शिक्षकों को विद्यार्थियों के स्तर के हिसाब से पाठ्यवस्तु पढ़ने के लिए देनी चाहिए और पठन कौशल के मूल्यांकन के लिए विभिन्नीकृत मुल्यांकन प्रविधियों का प्रयोग करना चाहिए। इससे हम द्वितीय भाषा के पाठ को समझने की कठनाइयों और गलतियों के होने की संभावना ही कम कर देते है।
2. द्वितीय भाषा की पाठ्यवस्तु को समझने में बच्चों को सुविधा हो इसलिए हम शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों के प्रथम भाषा ज्ञान का सदुपयोग करें। प्रथम भाषा की पाठ्यवस्तु से हम सदृश और विषम पाठ्यवस्तु को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते है।
3. शिक्षकों को अधिगम सिद्धांतों में सामाजिक और संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धांतों; तथा चौमस्की (Chomsky) वाइगोत्सकी (Vygotsky), हेलीडे (Halliday) के भाषा सिद्धांतों को ध्यान में रखना चाहिए और विद्यार्थियों की द्वितीय भाषा पाठ को समझने की कठिनाइयों का निवारण करना चाहिए। जबतक हमे यह पता नहीं होगा की भाषा अधिगम और अर्जन कैसे होता है, और प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा अर्जन में कौन कौन से कारक सक्रिय होते है तब तक हम न तो उनकी कठिनाइयों का निदान कर पाएंगे और न ही समाधान।
4. अनुलिपि और भावलिपि (Translation & Paraphrasing) भी बच्चों को गैर स्थानीय भाषा पाठ को समझने में मदद कर सकती है। यह एक शिक्षण विधि भी है और संज्ञानात्मक विकास का मानक भी। अतः हम शिक्षक अनुलिपि (अनुवाद) को माध्यम के रूप में प्रयोग करके बच्चों में पाठ की समझ का विकास कर सकते है। इसके आलावा हम बच्चों में अनुलिपि की क्षमता का विकास करके उन्हे गैर-स्थानीय भाषा पाठ को समझने में आत्मनिर्भर भी बना सकते है।
5. जो विद्यार्थी किसी भाषा की पाठ-संरचना (Text-Structure) को समझते हैं वे उस भाषा की पाठ्यवस्तु के अर्थ को भी आसानी से समझ जाते हैं। पाठ संरचना की समझ की भाषा को सीखने व समझने मे महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः हम शिक्षक बच्चों को पाठ की संरचना का विश्लेषण करके बच्चों में संरचनात्मक जागरूकता का विकास कर सकते हैं और इस प्रकार उनकी कठनाइयों का स्थायी समाधान कर सकते है।
6. द्वितीय भाषा की शब्दावली में बच्चों को संपन्न बनाकर पाठ को समझने की कठिनाइयों का निवारण किया जा सकता है। इसके लिए शब्द-खेल, शब्दाक्षरी (अंत्याक्षरी की तरह) आदि का संयोजन कर सकते है। इसके अलावा शब्द-शिक्षण की मनोरंजक विधियां (जैसे कि कहानी विधि का प्रयोग करके) बच्चों की द्वितीय भाषा के शब्द-ज्ञान का विस्तार किया जा सकता है। परिणामतः बच्चे उस भाषा के पाठ को समझ सकेंगे। पठन के दौरान पाठ में आए नए शब्दों का शब्दकोश के माध्यम से ज्ञान कराया जा सकता है उसके बाद बच्चों को पाठ को पुनः पढ़ने के लिए निर्देशित किया जा सकता है। अब दोबारा पढ़ते समय बच्चे उस पाठ को अधिक समझ सकेंगे। इस प्रकरण में शब्द-शिक्षण के

लिए कहानी विधि के प्रयोग का उदाहरण किसी को असंगत लग सकता है।इसकी विस्तृत चर्चा करने का अवसर यहाँ नही है अतः मै सिर्फ उदाहरणार्थ कुछ में से एक पुस्तक जो कि विल्फ्रेड फंक महोदय द्वारा लिखी है का सुझाव देकर आगे बढता हूँ (संदर्भ-सूची देखे- Funk, 2011)।

7. इसके पर्याप्त साक्ष्य हैं कि पढ़ना सीखने के लिए व्यापक-पठन (Extensive Reading) अत्यधिक सहायक होता है। अतः शिक्षकों को पढ़ने के लिए संसाधन और वातावरण तैयार करना चाहिए। पाठ्यचर्या के साथ-साथ अनुपूरक बाल साहित्य सावधानी से चयनित किया जा सकता है। कक्षा-कक्ष पुस्तकालयों की भी व्यवस्था की जा सकती है। बच्चों को हम पढ़ने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। विद्यार्थियों को व्यापक पठन के लिए प्रेरित करने के लिए सबसे अच्छा उदाहरण है कि शिक्षक स्वयं आदर्श पाठक बने और विद्यार्थियों के समक्ष एक प्रतिमान प्रस्तुत करें। नए-नए साहित्य को पढ़ने के बाद बच्चों के साथ हम चर्चा करें इससे बच्चे उन पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रेरित होंगे। परिणामतः पढ़ने से पढ़ने की क्षमता का विकास होगा(learning to read by reading)
8. जो बच्चे प्रथम पीढ़ी के पढ़ने वाले हैं उनके घर में पर्याप्त सहयोग और वातावरण उपलब्ध नहीं होता है। इन्हें शिक्षा साहित्य में 'प्रथम पीढ़ी अधिगमकर्ता First Generation Learner) कहा जाता है। जिनके माता-पिता शिक्षित होते हैं वे बच्चे कुछ शब्द ज्ञान (प्रथम भाषा और द्वितीय भाषा) के साथ विद्यालय आते हैं। एक आदर्श मध्यवर्गीय शिक्षित परिवार के बच्चे को विद्यालय पूर्व औसतन 1000 घंटे का गृह अनुदेशन(Tuition) मिल चुका होता है (Adams, 1990)। यद्यपि एडम महोदाय का सर्वेक्षण भारत से बाहर का है पर हमारे यहाँ की स्थिति कमोबेस ऐसी ही होती है। शिक्षित और अशिक्षित माता-पिता का यह अंतर सम्पूर्ण विद्यालयी शिक्षा के दौरान बना ही रहता है। हम शिक्षकों को इस अंतर को समझते हुए बच्चों को पाठ्यवस्तु पढ़ने के लिए देनी चाहिए। यदि संसाधनों की कमी ना हो तो प्रथम पीढ़ी पाठको के लिए उपचारात्मक अनुदेशन (Remedial Teaching) की व्यवस्था भी करनी चाहिए।
9. उचित पठन-रणनीतियों (Reading Strategies) का शिक्षण भी आवश्यक है। पाठ्यवस्तु को पढ़ने में कुछ संज्ञानात्मक/परा- संज्ञानात्मक रणनीतियां बच्चे अपना सकते हैं जैसे कि अपने आपसे प्रश्न करना कि इस पाठ को पढ़ने से हम क्या सीख सकते है? पाठ को पढ़ने से पहले, पढ़ने के दौरान और पढ़ने के बाद में 'क्या', 'कैसे', 'क्यों' की कसौटी पर पाठ को कसना चाहिए। हम शिक्षक बच्चों को ऐसा करके दिखा सकते हैं। एक कोई प्रकरण लेकर हम क्लास में पढ़े और फिर उस पर हम प्रतिक्रिया(Reflection) दें। सस्वर पठन और सस्वर चिंतन (loud reading and loud thinking/reflection) के द्वारा बच्चों को पठन-रणनीतियों का प्रशिक्षण दिया जा सकता है।
10. पाठ्य सामग्री आधारित अनुदेशन(Content Based Instruction) द्वितीय भाषा अनुदेशन के संदर्भ में अत्यधिक प्रभावशाली माना गया है (Mohan, 1990)। इस अनुदेशन विधि के माध्यम से शिक्षण करने के दौरान पाया गया है कि बच्चे पढ़ने के लिए अधिक प्रेरित होते हैं, उनमें पढ़ने की रणनीतियों का विकास होता है, व्यापक पठन के अवसर बढ़ते हैं और विद्यार्थियों की शब्दावली का विस्तार भी होता है।

11. बच्चो के स्तर के हिसाब से हम अक्षर, शब्द, य वाक्य शिक्षण की विधियों का प्रयोग कर सकते है। सस्वर वाचन (Loud Reading) से हम बच्चों की शब्द-ध्वनि की समझ का आकलन भी कर सकते है। जैसा की हम जानते है कि चारो भाषा कौशल एक दूसरे से जुड़े हुए है अतेव सही ध्वनि सही अर्थ को समझने में सहायक होती है। इस लिए हम बच्चों कि पठन क्षमताओं को ध्वनिशास्त्रीय शिक्षण विधियों के प्रयोग द्वारा भी संवर्धित कर सकते है।

निष्कर्ष रूप से हम कहा सकते है कि गैर-स्थानीय य विदेशी भाषा के पाठ को समझने कि क्षमता का विकास एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। विद्यार्थियों में इसके विकास हेतु हम शिक्षकों को सततरूप से धैर्यपूर्वक विभिन्न शिक्षण विधियों व रणनीतियों का प्रयोग करना होता है। इन विधियों को हम भाषा शिक्षण और भाषा विकास से संबन्धित पुस्तको में पढ़ सकते है।

अभ्यास प्रश्न

7. बेकन ने किस निबन्ध में पठन का लाभ बताया है?
8. भाषा शिक्षण में किन कौशलों का विकास किया जाता है?
9. डॉ वेस्ट के पठन के विषय मेन क्या विचार है?
10. पठन के दो प्रकार लिखिए।
11. गैर स्थानीय भाषा के पाठ को समझने में बच्चों की कठिनाइयों का निवारण कैसे करेंगे?

6.8 शब्दावली

1. **आत्म-व्याख्यात्मक (Self-explanatory):** जिसकी व्याख्या करने की आवश्यकता ना हो।
2. **वाक्य-विन्यास (Sentence Structure):** व्याकरण का अंग जिससे हम विभिन्न प्रकार के वाक्यों में शब्दों का स्थान निर्धारित कराते है।
3. **भाषा की संरचना और प्रणाली:** भाषाएँ एक वैज्ञानिक व्यवस्था होती है जिसकी एक संरचना (लिखित व मौखिक) के कुछ नियम होते है।
4. **सम्प्रेषणात्मक अंग्रेजी:** अंग्रेजी भाषा के अध्ययन का एक विषय जिसमे संवाद क्षमता के विकास पर बल दिया जाता है।
5. **मूल-पाठ(Text):** पाठ, विषयवस्तु य लिखित सामाग्री।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षण के प्रकार:
   - क. अनुदेशन(Instruction)
   - ख. अनुबंधन(Conditioning),

ग. प्रशिक्षण (Training), और

घ. मतशिक्षण (Indoctrination)।

2. सन 1835 में मैकाले ने अंग्रेजी भाषा माध्यम शिक्षा को प्रश्रय दिया?
3. अनुदेशन के लिए सबसे उत्तम माध्यम मातृभाषा होती है?

भारतीय संविधान के अनुच्छेद अनुच्छेद 350A में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा की बात कही गई है?

4. पराभाषिक-शिक्षणशास्त्र की विचाधारा कक्षा शिक्षण में भाषा उदारता और किसी एक माध्यम-भाषा पर निर्भरता से मुक्ति में विश्वास करती है।
5. मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा ना होने पर निम्नलिखित समस्याएँ आ सकती है:
   क. विद्यर्थियों विषय कि समझ कम हो सकती है।
   ख. विद्यार्थी असफल हो सकते है।
   ग. बच्चे विद्यालय छोड़ सकते है।
   घ. बच्चों के अंदर भाषा को लेकर हीन भावना का विकास हो सकता है।
   ङ. बच्चों के आत्म-सम्प्रत्यय को ठेस लग सकती है।
6. बेकन ने 'ऑफ स्टडीज' (Of Studies) निबन्ध में पठन का लाभ बताया है?
7. सुनना, बोलना, पढ़ना, और लिखना (Listening, Speaking, Reading & Writing)
8. डॉ वेस्ट के अनुसार पठन सीखने की आरंभिक अवस्था है
9. पठन के दो प्रकार : – गहन (Intensive), व्यापक(Extensive) पठन।
10. गैर स्थानीय भाषा के पाठ को समझने में बच्चों की कठिनाइयों का निवारण निम्नलिखित तरह से कर सकते है?
    क. बच्चों की द्वितीय भाषा शब्दावली का विस्तार करके।
    ख. अनुलिपि विधि से।
    ग. विभिन्नीकृत पाठ्यवस्तु निर्धारित करके।
    घ. उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था करके।

6.10 संदर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. Adams, M. (1990). Beginning to read: Thinking and learning about print. Baltimore MD: Brookes Publishing Co.
2. Ball, J. (2014). Children Learn Better in Their Mother Tongue: Advancing research on mother tongue-based multilingual education (February 21, 2014). Available on http://www.globalpartnership.org/blog/children-learn-better-their-mother-tongue

3. Bialystock, E. (1991). Language processing in bilingual children. Cambridge: Cambridge University Press.
4. Coulmas, F. (1991). The language trade in the Asia Pacific. Journal of Asia Pacific Communication, 2(1), 1-27.
5. Dua, H. R. (2008). Ecology of multilingualism: language, culture and society. Mysore: yashoda publication.
6. Edward, J. (2010). Language diversity in the classroom. Bristol (UK): Multilingual Matters.
7. Funk, W. (2011). Word Origins and Their Romantic Stories. New Delhi: Goyal Publishers.
8. Garcia, O. (2009). Bilingual education in 21st century: global perspective. West Sussex(UK): Wiley-Blackwell.
9. Garcia, O., and Wei, L. (2014). Translanguaging: Language, Bilingualism and Education. New York: Palgrave Macmillan.
10. Government of India (2009). The Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009. Ministry of Law and Justice, New Delhi.
11. Government of India, Ministry of Law and Justice (2007). The Constitution of India. Retrieved from http://lawmin.nic.in/coi/coiason29july08.pdf
12. Halliday, M.A. K. (1993). Towards a Language-Based Theory of Learning. Linguistics and Education 5, 93- 116. Retrieved from lchc.ucsd.edu/mca/Paper/JuneJuly05/Halliday Lang Based.pdf.
13. Halliday, M.A.K. (2004). Three Aspects of Children's Language Development: Learning Language, Learning through Language, Learning about Language. In J.J. Webster (ed.), The Language of Early Childhood: M.A.K. Halliday, pp 308-326, Ch. 14. New York: Continuum.
14. Halliday, M.A.K. (2004). Three Aspects of Children's Language Development: Learning Language, Learning through Language, Learning about Language. In J.J. Webster (ed.), The Language of Early Childhood: M.A.K. Halliday, pp 308-326, Ch. 14. New York: Continuum.
15. Kumaravadivelu, B. (2006). Understanding language teaching: from method to post method. New York: Routledge.

16. Mangal, S. K. & Mangal, U. (2010). Essential of educational technology. New Delhi: PHI Learning PVt. Ltd.
17. Mohan, B. (1990). LEP students and the integration of language and content: Knowledge structure and tasks. In C. Smich-Dudgeon (Ed.), Proceedings of the first research symposium on limited English proficient students' issues (pp. 113-160). Washington DC: Office of Bilingual Education and Minority Language affairs.
18. NCERT (2005). National Curriculum Framework, 2005. New Delhi: NCERT.
19. NKC (2009).National Knowledge Commission report to the Nation 2006-2009. New Delhi.
20. West, M., (1960) 'Learning to Read a Foreign Language. London: Longman।

6.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. गृहभाषा और विद्यालय भाषा में क्या अंतर है? दोनों अवधारणाओ की विस्तृत विवेचना किजिए।
2. विद्यालयी भाषा के निर्धारण के कारणों की समीक्षा कीजिए।
3. गैर-स्थानीय भाषा पाठ को समझने में विद्यार्थियों की सहायता करने की आपकी क्या योजना है?

खण्ड 2

Block 2

इकाई 1- कक्षा में संवाद :अर्थ , प्रकार्य, विशेषता एवं अभ्यास, सम्बंधित विषय क्षेत्र में अधिगम वृद्धि के लिए मौखिक भाषा प्रयोग करने की रणनीति

The discourse in classroom: Meaning, functions, characteristics and practices; Development of strategies for using oral language in the classroom for promoting learning in the subject area.

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 कक्षा में संवाद की प्रकृति
1.4 मौखिक भाषा की विशेषताएं
1.5 मौखिक भाषा के तत्व
1.6 विषय सम्बंधित क्षेत्र में अधिगम वृद्धि के लिए मौखिक भाषा प्रयोग करने की रणनीति
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भाषा मानव समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार है। ध्वनि के विविध स्वरों और प्रस्तुतीकरण के अन्यान्य रूपों के माध्यम से सृष्टि के समस्त प्राणी परस्पर सूचनाओं एवं भावनाओं का सम्प्रेषण करते हैं। हमारे आज के आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में हम ज्यादातर भाषा के लिखित एवं मौखिक स्वरुप पर निर्भर रहते हैं। मौखिक भाषा की सहायता से ही विद्यार्थी एवं शिक्षक कक्षा में संवाद स्थापित कर पाने में सफल होते हैं जो कि उनके ज्ञानार्जन का मूल आधार होता है। विज्ञान हो या कला वाणिज्य हो या संगीत सभी तरह के विषयों का मूल ज्ञान संवाद एवं मौखिक भाषा से ही प्राप्त किया जाता है। अतः विभिन्न विषयों

के अधिगम में भी मौखिक भाषा संवाद स्थापित करने के लिए एवं ज्ञानार्जन के लिए अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. कक्षा में संवाद की प्रकृति को समझ सकेंगे।
2. मौखिक भाषा के महत्व को समझा सकेंगे।
3. मौखिक भाषा के उद्देश्यों को बता सकेंगे।
4. मौखिक भाषा में दक्ष होने की रणनीतियों को समझा सकेंगे।
5. मौखिक भाषा की आवश्यकता को बता सकेंगे।

1.3 कक्षा में संवाद की प्रकृति (Nature of Discourse in Classroom)

कक्षा कक्ष में संवाद का अपना ही महत्व है क्योंकि कक्षा में संवाद के द्वारा ही अधिकाँश अधिगम संपन्न होता है। इसके अभाव में अधिगम की कल्पना ही संभव नहीं है । बेहतर अधिगम के लिए बेहतर संवाद भी आवश्यक है। बेहतर संवाद से तात्पर्य स्वस्थ संवाद से है जिसमें कि विद्यार्थी एवं शिक्षक दोनों की भरपूर सहभागिता हो। एकांगी बातचीत (One way talk) का कक्षा में कोई विशेष महत्व नहीं होता है क्योंकि यह कक्षा कक्ष को शिक्षक केंद्रित बना दता है। यदि कक्षा में संवाद दोनों ही तरफ से (विद्यार्थी एवं शिक्षक) के तरफ से आवश्यकतानुसार ठीक ढंग से हो रहा है तो इस तरह का अधिगम सदैव बेहतर होता है। कक्षा में संवाद की प्रकृति को निम्न तरीके से समझा जा सकता है।

1. लोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति **(Democratic Discourse Situation)**
2. अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति **(Non- Democratic Discourse Situation)**

लोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति (Democratic Discourse Situation): लोकतांत्रिक संवाद परिस्थितियाँ वो परिस्थितियाँ होतीं हैं जिनमें विद्यार्थी एवं शिक्षक को सामान अधिकार प्राप्त होते हैं। इस तरह के संवाद में विद्यार्थी अपनी सभी समस्याओं का निदान बिना किसी डर एवं हिचक के कर लेता है। आधुनिक विद्यार्थी केंद्रित शिक्षा प्रणाली इसी संवाद परिस्थिति पर केंद्रित होती है। इस तरह के संवाद परिस्थिति में अधिगम प्रक्रिया बहुत तेज एवं स्पष्ट होती है। यह संवाद परिस्थिति अधिगम प्रक्रिया को बेहतर बनाने के साथ साथ नयी चीज़ों को सीखने के लिए भी एक बेहतर माहौल उपलब्ध कराता है।

अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति (Non- Democratic Discourse Situation):अलोकतांत्रिक संवाद प्रकृति विद्यार्थी केंद्रित न होकर शिक्षक केंद्रित होती है। इसमें विद्यार्थियों के स्थान पर शिक्षक की प्रधानता होती है। इस तरह के संवाद में विद्यार्थी के पास अधिगम होने की संभावना बहुत कम होती है।

इस विधि में सामन्यतः शिक्षक भाषण विधि (lecture method) से पढाता है जिससे विद्यार्थी को प्रश्न पूछने की संभावना घट जाती है एवं वह अपने समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है। उपरोक्त दोनों विधियों में लोकतांत्रिक संवाद विधि ज़्यादा प्रभावशाली एवं लोकप्रिय मानी जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने भी लोकतांत्रिक संवाद विधि को ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी माना है।

अभ्यास प्रश्न

1. कक्षा में संवाद की प्रकृति पर एक टिप्पणी लिखिए ?
2. लोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति से आप क्या समझते हैं ?
3. अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति से आप क्या समझते हैं ?
4. लोकतांत्रिक एवं अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति में अंतर स्पष्ट करें ?

1.5 मौखिक भाषा की विशेषताएं (Characteristics of Oral Language)

सामान्यतया बालक अनुकरण (Imitation) द्वारा मौखिक भाषा का प्रयोग स्वतः ही करने लगता है परन्तु विद्यालय में औपचारिक रूप से इस कौशल को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। विशेषकर भाषा के अध्यापक को इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि वह मौखिक भाषा- कौशल को विकसित करने की दृष्टि से छात्रों को किस तरह से बोलना सिखाये और उनके मौखिक अभिव्यक्ति कौशल को क्या दिशा प्रदान करे। इसके लिए उसे मौखिक भाषा के निम्न गुणों की जानकारी होना आवश्यक है।

1. **अवसर के अनुकूल (According to Occasion) :** अवसर के अनुसार ही भाषा का प्रयोग होना चाहिए। जीवन के विभिन्न अवसरों पर हर्ष, उल्लास, शोक, दुःख, दया, सहानुभूति एवं प्यार आदि भावों को व्यक्त करना पड़ता है। इन भावों के अनुकूल ही उचित हाव- भाव के साथ मौखिक अभिव्यक्ति करनी चाहिए।
2. **शिष्टता (Humbleness) :** किसी भी व्यक्ति के साथ वार्तालाप करते समय शिष्टाचार का ध्यान रखना चाहिए। अशिष्ट मौखिक अभिव्यक्ति सामाजिक संबंधों को बिगाड़ देती है।
3. **श्रोताओं के अनुकूल भाषा (Language as per the standard of the listener):** जिस स्तर के व्यक्तियों से बात की जाए उसी प्रकार की भाषा का प्रयोग करना चाहिए।
4. **स्वाभाविकता (Naturality) :**बोलने में स्वाभाविकता होनी चाहिए। बनावटी बोली का प्रयोग हास्यास्पद हो जाता है। अस्वाभाविक भाषा वक्ता को अविश्वसनीय बना देती है। स्वाभाविक भाषा एवं अभिव्यक्ति विश्वसनीय होती है।

5. **मधुरता (Sweetness):** मौखिक अभिव्यक्ति में मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। वाणी की मधुरता ही व्यक्ति को मित्र बना लेती है और कठोरता शत्रु बना देती है। मीठी वाणी का प्रयोग का किसी व्यक्ति से सहजता से काम निकाला जा सकता है।
6. **प्रवाहिकता (Fluency):** मौखिक अभिव्यक्ति में उचित प्रवाह होना चाहिए। विराम चिन्हों के उचित पालन से अभिव्यक्ति में सम्यक गति व प्रवाह आ जाता है। कान्हा कम रूकना है, कहाँ पूर्ण विराम देना है, कहाँ प्रश्नसूचक गति देनी है, कहाँ विस्मयजनक, इन बातों के उचित पालन से अभिव्यक्ति बहुत प्रभावशाली बन जाती है।
7. **सर्वमान्य भाषा (Universal Language) :** मौखिक अभिव्यक्ति में सर्वमान्य भाषा का प्रयोग करना चाहिए। अप्रचलित शब्दों के प्रयोग से वार्तालाप नीरस बन जाता है।
8. **सरलता (Simplicity):** जो भी बात कही जाए उसके लिए सरल व सुबोध भाषा का प्रयोग करना चाहिए। अभिव्यक्ति का लाभ तभी है जब वह श्रोता को समझ में आ जाए।
9. **शुद्धता (Correctness) :** बोलते समय शुद्ध भाषा का प्रयोग करना चाहिए। उच्चारण भी शुद्ध होना चाइये। अशुद्ध उच्चारण व अशुद्ध भाषा के वक्तव्य प्रभावहीन हो जाता है।
10. **स्पष्टता (Clarity) :** बोलने में स्पष्टता होनी चाहिए। जो भी बात कही जाए स्पष्ट एवं साफ़ होनी चाहिए। बात को घुमा – फिराकर नहीं बल्कि सीधे शब्दों में साफ़- साफ़ कहना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

5. मौखिक भाषा के कौन से गुण इसको अन्य माध्यमों से अलग बनाते हैं ?
6. मौखिक भाषा के विशेषताओं पर प्रकाश डालें ।
7. मौखिक भाषा के प्रवाहिकता पर एक टिप्पणी लिखें ।

1.6 मौखिक भाषा के तत्व (Elements of Oral Language)

मौखिक भाषा जन सामान्य के व्यवहार की वस्तु है और इसका उद्भव सामाजिक जीवन के विविध व्यवहारों के संचालन के लिये ही हुआ। समाज समय, परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुसार बदलता रहता है और भाषा उसी की अनुगामी बनी रहती है। किन्तु भाषा का त्वरित परिवर्तन किसी भी प्रकार आवश्यक और उपयोगी नहीं है। इसलिए भाषा के स्वरुप को स्थायित्व दिए जाने की ज़रूरत है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भाषा के तत्वों का अध्ययन और उसके संरक्षण का प्रयास किया जाता है। इसी के साथ भाषा के स्वरूप को समझने और सही भाषा प्रयोग के लिये भाषा का व्यावहारिक विश्लेषण किया जाना चाहिए।

i. **वाक्य शब्द और अक्षर :** मौखिक भाषा वाक्यों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है । वाक्य मौखिक भाषा के मौलिक इकाई है । मौखिक भाषा में यदि कभी शब्द या क्षर का एक इकाई के रूप में प्रयोग होता है तो वह भी वाक्य का स्थानपन्न होता है । उदाहरण के लिए यदि "क्या तुम बाज़ार गए थे ? इस प्रश्न के उत्तर में हाँ कहा जाता है ति इसका तात्पर्य है कि हाँ में बाज़ार गया था। इस प्रकार वाक्य मौखिक भाषा की मौलिक इकाई है । बालक जब परिवार की भाषा के अनुकरण से मातृभाषा ग्रहण करता है तो वाक्य रूपी शब्दों से ही भाव सम्प्रेषण करता है । यदि वह पानी कहता है तो तात्पर्य होता है कि प्यास लगी है । इस प्रकार से भाषा सीखने और प्रयोग करने का स्वाभाविक क्रम वाक्यों से आरम्भ होता है ।

ii. **विषयानुकूल भाषा शैली :** समाज में व्यवहार के लिए विभिन्न अवसरों पर, विभिन्न विषयों के बारे में और विभिन्न लोगों से बातचीत का तरीका सीखना आवश्यक है । शिक्षित और अशिक्षित, ग्रामीण व शहरी लोगों की भाषा में अंतर् होता है । इसी क्रम में औपचारिक और अनौपचारिक, कार्यालयी और व्यापारिक भाषा रूपों में अंतर होता है ।

iii. **उचित स्वर गति, बालाघात और विराम :** समाज में भाषा – प्रयोग एक संवेदनशील मुद्दा है । इसके लिए अनेक प्रकार के की कुशलताओं और सावधानियों की अपेक्षा होती है। इसमें स्वर और गति शामिल हैं । स्वर का तात्पर्य है बोलते हुए आवाज़ की उच्चता या मंदता और गति का तात्पर्य है बोलते हुए ज़ल्दी-ज़ल्दी या धीरे-धीरे बोलना । सदा ऊँची या नीची आवाज़ में बात करना सफल वाकशैली नहीं कही जा सकती ।

iv. **विषय / भावानुकूल शब्दचयन :** भाषा में एक प्रकार के भावों और स्थितियों को प्रकट करने के लिए एक सामान प्रतीत होने वाले शब्द पाए जाते हैं । इन शब्दों के भाव और अर्थ में किंचित अंतर् होता है जो कथन को अधिक प्रभावी बनाने में उपयोगी होता है । जनसाधारण इन शब्दों में स्पष्टतः भेद नहीं कर पाते इसलिए जो शब्द सामने पड़ता है उसी का प्रयोग कर डालते हैं।

v. **हाव भाव एवं अंग संचालन :** भाषा समाज की जीवन्तता और गतिशीलता की कुंजी है। बात करते हुए मनुष्य तो क्या पशु भी अंग संचालन अवश्य करते हैं । इससे कथ्य जीवंत और अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है। हाव- भाव का तात्पर्य है बात करते हुए माथे की सिकुडन तथा शरीर के ने हिस्सों के हरकतों से कथ्य कपो अधिक स्पष्ट और भावपूर्ण बनाने का प्रयास करना। इसी प्रकार का प्रयास जब हाथों की अंगुलियां, मुट्ठी, बाजू और कन्धों की सहायता से होता है तो अंग-संचालन कहलाता है। वास्तव में जैसे भाव अपनी अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का आश्रय लेते हैं वैसे ही हाव-भाव एवं अंग-संचालन भी अभिव्यक्ति को अधिक अर्थपूर्ण बनाने का उपक्रम करते हैं।

vi. **मौलिकता, स्वाभाविकता तथा सहजता:** भाषा किसी व्यक्ति की निजी व स्वानुभूत भावनाओं, आवश्यकताओं और विचारों के सम्प्रेषण का माध्यम है ।हम समाज के सानिध्य एवं अनुकरण से भाषा सीखते अवश्य हैं लेकिन उसका प्रयोग हमारे आवश्यकताओं के अनुरूप होता है न कि

अन्यों की नक़ल या उत्प्रेरण से। भाषा के शब्द उसके सभी प्रयोक्ताओं के व्यक्तिगत अंतर्भावों के प्रकाशन के माध्यम होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

8. उचित स्वर गति, बालाघात और विराम से आप क्या समझते हैं ?
9. मौलिकता, स्वाभाविकता तथा सहजता को परिभाषित कीजिये।
10. वाक्य शब्द और अक्षर का मौखिक भाषा में क्या महत्व है ?
11. मौखिक भाषा के तत्व पर प्रकाश डालें ।

1.7 विषय सम्बंधित क्षेत्र में अधिगम वृद्धि के लिए मौखिक भाषा प्रयोग करने की रणनीति (Strategies For Using Oral Language in the Classroom to Promote Learning in the Subject Area)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह अपने सोच एवं विचार को एक दूसरे तक लेन- देन करना चाहता है। इस काम के लिए वह भाषा के दोनों रूपों का प्रयोग करता है। वाणी (Speech) व लिखित रूप (Written form)– जब व्यक्ति, ध्वनियों के माध्यम से, मुख के अवयवों के मदद से, उच्चरित भाषा का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को प्रकट करता है तब उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहा जाता है। इस तरह से मुख से अभिव्यक्त होने वाली भाषा मौखिक भाषा (Oral Language) है और मुख के अवयवों के द्वारा भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति मौखिक अभिव्यक्ति है। मौखिक अभिव्यक्ति भाषायी चार कौशलों में से एक कौशल है। साधारण भाषा में इसे बोलचाल कहा जाता है। समाज में हम अपने अधिकाँश कार्य व्यवहार बोलचाल द्वारा ही सम्पन्न करते हैं। यह विचारों के आदान प्रदान का सरलतम माध्यम है। लिपि के आविष्कार से पूर्व समस्त ज्ञान बोल कर ही दिया जाता था और यह क्रम कई पीढ़ियों तक चलता रहता था। आज भी जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने के लिए मौखिक अभिव्यक्ति में कुशलता है।

मौखिक भाषा का महत्व (Importance of Oral Language): मानव जीवन की जितनी भी मूलभूत जरूरतें है, उनमें भावों एवं विचारों की अभिव्यक्ति भी एक अनिवार्यता है। जीवन के हर क्षेत्र में मौखिक भाषा का अपना ही महत्व है। इसके महत्व को निम्नलिखित दृष्टि से देखा जा सकता है –

i. मौखिक भाषा के प्रयोग से कुशल व्यक्ति अपनी वाणी से जादू जगा सकता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में हम अटल बिहारी बाजपेयी के शास्त्रीय भाषणों (Classical speeches)का

उदाहरण ले सकते हैं कि किस प्रकार से उन्होंने अपने भाषणों के दम पर देश में ही नहीं बल्कि अन्तरराष्ट्रीय जगत में भी अपनी अनूठी पहचान बनायी।

ii. बालक के अंदर जिज्ञासा जन्म लेती है वह तरह के प्रश्न पूछ कर अपनी इस जिज्ञासा को शांत करता है और प्रसन्नता का अनुभव करता है। इससे उसके स्वाभाविक विकास में सहायता मिलती है। उसके आत्म विश्वास में वृद्धि होती है और व्यक्तित्व में निखार आता है।

iii. भाषा शिक्षण का एक स्वाभाविक क्रम है – बोलना, सुनना, पढ़ाना और लिखना। बालक को मौखिक भाषा का प्रयोग सुनाने और बोलने में दक्ष बनाता है। यह बोल- चाल हे पढ़ने – लिखने के कौशल को विकसित करने का आधार बनता है।

iv. मौखिक भाषा ही अभिव्यक्ति का सहज एवं सरलतम माध्यम है। मौखिक भाषा में ही मनुष्य अपने भावों को स्वाभाविक रूप में दूसरे के सामने व्यक्त कर पाता है।

v. दैनिक जीवन में सभी कार्य- कलापों में मौखिक भाषा ही प्रयोग होती है। अपने समाज में, परिवार में अन्य सदस्यों के साथ विचारों का आदान – प्रदान करने के लिए तथा अपनी बात उनसे कहने व उनकीं बात समझने के लिए भाषा के इसी रूप का प्रयोग करना होता है।

vi. मौखिक भाषा के द्वारा विचारो को नए ढंग से आदान- प्रदान में बढोत्तरी की जाती है। अशिक्षित व्यक्ति बोलचाल के द्वारा ही ज्ञान अर्जित कर लेता है।

vii. वार्तालाप, बोलचाल या प्रश्नोत्तर द्वारा सीखी गयी विस्व्वास्तु अपना स्थायी प्रभाव छोडती है। इस प्रकार विद्यालय में शिक्षण – पद्धति को रोचक व प्रभावशाली बनाने में भी मौखिक भाषा का अत्यधिक महत्व है।

viii. सामाजिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करने एवं सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने में भी मौखिक भाषा की प्रमुख भूमिका होती है।

ix. राजनीतिक जीवन में आधुनिक युग में तथा सफलता की दृष्टि से भी मौखिक भाषा का अपना महत्व है। एक नेता अपनी भासन- कला के द्वारा ही जन- समुदाय को अपना बना लेता है और अपनी बातचीत के द्वारा अपने संपक में आने वाले व्यक्तियों को प्रभावित कर लेता है।

x. विद्यालयी पाठ्यक्रम में सभी विषयों की शिक्षा में मौखिक भाषा ही प्रमुख माध्यम होता है।

मौखिक भाषा ही सभी विषयों का ज्ञानार्जन करने का मूल आधार है। मौखिक भाषा के बिना सीखना और सिखाना दोनों ही कठिन है। अतः प्रारंभिक स्तर पर से ही मौखिक भाषा की शिक्षा प्रदान की जानी आवश्यक है ताकि उच्च कक्षा तक पहुँचते- पहुंचाते उनकी अभिव्यक्ति में शुद्ध, स्पष्टता, सुबोधता, मधुरता, प्रवाहिकता, स्वाभाविकता एवं प्रभावोत्पादकता पूरी तरह से विकसित हो जाए। इसके लिए अध्यापक निम्नलिखित शिक्षण विधियों एवं साधनों का प्रयोग कर सकता है –

i. **वार्तालाप** - पाठ्य – पढ़ाते समय या किसी अन्य अवसर पर व शिक्षक को चाहिए की बातचीत करे। हर छात्र को वार्तालाप में भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहिए। वार्तालाप का विषय बच्चों के ज्ञान व अनुभव की परिधि के अंदर का होना चाहिए। यदि कोई बच्चा

उत्सुकता प्रश्न पूछे तो उसके प्रश्न का उत्तर दे कर उसकी उत्सुकता को संतुष्ट करना चाहिए। वार्तालाप में छात्रों से भी प्रश्न पूछकर उनके मुख से उत्तर निकलवाने का प्रयास करना चाहिए।

ii. **प्रश्नोत्तर** – मौखिक शिक्षा देने के लिए प्रश्नोत्तर एक अच्छी विधि है। सामान्य विषयों पर या पाठ्यपुस्तक से सम्बंधित पाठों पर छात्रों से प्रश्न पूछने चाहिए। छात्रों से पूर्ण रूप से उत्तर स्वीकार करना चाहिए। यदि उत्तर अपूर्ण या अशुद्ध हो तो उसे साहनुभूति पूर्वक पूर्ण या शुद्ध करवाया जाये।

iii. **चित्र- वर्णन :** चित्र देखने में छोटे बच्चे रुचि लेते हैं। इस प्रकार किसी चित्र को दिखाकर उस पर प्रश्न पूछ कर बच्चों से चित्र वर्णन कराना चाहिए। जैसे गाय का चित्र दिखाकर गाय के बारे में अनेक बातें बता सकता है। इसी प्रकार चित्र के द्वारा कहानी कही जा सकती है। मौखिक अभिव्यक्ति के लिए चित्र- वर्णन एक रोचक प्रणाली है ।

iv. **स्वतंत्र आत्मप्रकाशन का अवसर :** बच्चों को समय – समय पर अलग- अलग तरह के अनुभव होते हैं। अलग – अलग घटनाओं, दृश्यों या व्यक्तिगत जीवन से सम्बंधित इन अनुभवों को सुनाने के लिए अवसर देकर अध्यापक मोखिक भाषा का अभ्यास करा सकता है।

v. **अनुच्छेद – सार या पाठ का सार** : पाठ्य – पुस्तक या अन्य किसी पत्रिका का कोई पाठ या रचना पढकर उसका सार तत्व बताने के लिए कहा जाता है। छात्र रचना की प्रमुख बातें संक्षेप में व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार किसी पाठ का कोई अनुच्छेद पढकर उसका सार बताने के लिए कहा जाता है

vi. **वाद- विवाद** : पूर्व – निर्धारित विषय पर इसमें बालक विचारों का आदान प्रदान करते हैं। कुछ बालक विषय के पक्ष में और कुछ विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।

vii. **भाषण**: पूर्व निर्धारित कोई रूचिकर विषय देकर, अध्यापक छात्रों को भाषण देने का अवसर प्रदान कर सकता है। भाषण मौखिक अभिव्यक्ति का एक आसान साधन है। भाषा का विषय छात्रों के मानसिक स्तर के अनुसार होना चाहिए। ज़रूरत के अनुसार छात्रों उचित मार्गदर्शन भी करना चाहिए। समय- समय विभिन्न भाषण प्रतियोगिताओं का आयोजन करके छात्रों को भाषण में भाग लेने के लिए प्रोत्साहन करने का प्रयास भी करना चाहिए।

viii. **नाटक- कला:** नाटक मौखिक अभिव्यक्ति के सभी गुणों को विकसित करने के लिए एक उपयोगी साधन है। इसमें भाग लेने वाले विद्यार्थी को पात्र के चरित्र के अनुसार सही हाव- भाव, उतार चढाव के साथ एवं प्रवाह के साथ संवाद प्रस्तुत करने होते हैं। इस प्रकार उचित नाटक का चुनाव कर, अध्यापक को छात्रों कू नाटक मंचन में पूर्ण सहयोग देना चाहिए। इससे छात्र पूरी लगन के साथ मौखिक अबिव्यक्ति की विविध शैलियों को सीखते तथा उसका अभ्यास करते हैं।

ix. **कविता पाठ :** छोटे बच्चे गीत सुनाने व सुनाने दोनों में ही काफी रुचि लेते हैं। अतः कवितायें याद कराके उन्हें कविता पाठ के लिए प्रेरित करना चाहिए। उचित हाव – भाव व अंग संचालन

के साथ कविता पाठ करने में उन्हें बहुत आनंद का अनुभव होता है। इसलिए कविता पाठ मौखिक अभिव्यक्ति की शिक्षा देने का एक उपयोगी साधन है।

x. **अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता :** इस साहित्यिक क्रिया में बालक कविताओं को कंठस्थ करते हैं और प्रतियोगिता के समय पहले दल के द्वारा कही गयी कविता जिस वर्ण पर समाप्त होती है, उसी वर्ण से शुरू होने वाली कविता सुनाते हैं। इससे बच्चों में कविता के प्रति रुचि उत्पन्न होती है और मौखिक अभिव्यक्ति का अभ्यास भी होता है।

xi. **सस्वर वाचन :** पाठ्य – पुस्तक का पाठ शुरू करते समय शिक्षक को चाहिए कि वह स्वयं अनुच्छेद का वाचन करे। फिर विद्यार्थियों से वाचन कराएं जिससे कि मौखिक अभिव्यक्ति का संकोच दूर हो जाए।

xii. **कहानी के माध्यम से पाठ को रोचक बनाना :** बच्चे कहानियों को बहुत पसंद करते हैं। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह पहले स्वयं ही कहानी सुनाये और फिर बच्चों को उसी कहानी को सुनाने के लिए कहे। इससे श्रवण कौशल एवं मौखिक अभिव्यक्ति कौशल दोनों को विकसित करने में सहायता मिलती है।

मौखिक अभिव्यक्ति दोष कारण ,निदान तथा उपचार

बोलते समय तथा सस्वर पठन करते समय तुतलाना , हकलाना, शब्दों का चबाना आदि मौखिक अभिव्यक्ति दोष कहलाते हैं। मौखिक अभिव्यक्ति दोष के मुख्तः तीन कारण होते हैं: १. शारीरिक विकार २. भय और आतंक का वातावरण और ३. मानसिक अवरुद्धता।

i. शारीरिक विकार : मौखिक अभिव्यक्ति का सीधा सबंध वागेन्द्रियों अथवा उच्चारण अवयवों – जिह्वा , कंठ , दांत , नाक, तालू आदि से है। इनमें किसी प्रकार विकार उत्पन्न होने से उच्चारण स्पष्ट नहीं हो पाता। मौखिक अभिव्यक्ति के अधिकाँश दोष उच्चारण सम्बन्धित होते हैं , जैसे तुतलाना, भारी आवाज़ होना, अतिरिक्त अनुनासिकता, शब्दों को चबाना आदि। श्रवणेन्द्रियाँ (कान) में दोष भी मौखिक अभिव्यक्ति में आड़े आता है , जिसके कारण उच्चारण दोष आ जाता है। जो बच्चे ठीक से सुन नहीं पाते उन्हें बोलने में भी कठिनाई होती है।

ii. भय और आतंक का वातावरण : चाहे घर हो या विद्यालय, भय और आतंक का वातावरण बच्चे का सांवेगिक संतुलन बिगाड़ देता है। क्रोधी माता- पिता के बच्चे हकलाने लगते हैं। अध्यापक की लगातार दांट फटकार से बच्चे में आत्मविश्वास की कमी हो जाती है, जो उसकी मौखिक अभिव्यक्ति को दोषपूर्ण बना देती है।

iii. मानसिक अवरुद्धता : बालक की मानसिक अवरुद्धता उसकी मौखिक अभिव्यक्ति में बाधक होती है। ऐसे बालक की बुद्धिलब्धि का स्तर सामान्य बच्चों की तुलना में दो वर्ष पीछे होता है और वो अपेक्षाकृत देर से बोलना सीखते हैं।

वागेन्द्रीय य दोष वाले बच्चों को निम्न लक्षणों से पहचाना जा सकता है।

i. ऐसे बच्चे सामान ध्वनि वाले वर्णों में अन्तर नहीं कर पाते और एक ही सामान उसका उच्चारण करके पढते हैं , जैसे श व स । वे अल्पप्राण व महाप्राण वाले ध्वनियों में भी ठीक से विभेद नहीं कर पाते। जैसे- क, ख, ट, ठ आदि ।

ii. ऐसे बच्चे बोलते या पढते समय हकलाते हैं , कभी एकवर्ण पर और कभी एक शब्द पर ही उनकी वाणी रुक जाती है । जिससे अगला शब्द या वर्ण देर से मुखरित होता है । इस कारण उनकी मौखिक अभिव्यक्ति में प्रवाह नहीं रह पाता है।

iii. ऐसे बच्चे बोलते समय तुतलाते हैं जिससे श्रोता को उसका कथन समझने में कठिनाई होती है। फलतः उनमे हीनता की भावना घर कर जाती है तथा वो दूसरे से बातचीत करने में घबराने लग जाते हैं ।

उपचारात्मक सहायता हेतु मार्गदर्शक निर्देश : अभिव्यक्ति सम्बन्धित दोषों तथा उनके कारणों का पता लगा लेने के बाद अध्यापक उन्हें सुधारने केलिए निम्न लिखित उपचारात्मक सहायता कर सकते हैं ।

i. तुतलाने वाले बच्चों को निरंतर बोलने का अभ्यास करवाएं । यदि निरंतर अभ्यास से भी उनमें कोई सुधार नहीं होता है तो किसी अच्छे डाक्टर से परामर्श का सुझाव देंवें ।

ii. तुतलाने व हकलाने वाले बच्चे को बोलने के अतिरिक्त अवसर अवश्य प्रदान करें । उनका मनोबल ऊँचा करने के लिए उन्हें अतिरिक्त अवसर अवश्य प्रदान करें । उनके साथ प्रेम एवं सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाएँ। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि इन बच्चों के उच्चारण का कक्षा के अन्य बच्चे मजाक न उडाएं ।

iii. इन बच्चों के साथियों को प्रोत्साहित करें कि वे इनके साथ घुल मिल जाएं और उनका उच्चारण ठेक करने में उनकी हर प्रकार से सहायता करें ।

iv. कठिन ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण करने के लिए और सीखाने के लिए टेप रिकार्डर , अन्य दृश्य श्रव्य साधनों तथा विभिन्न सॉफ्टवेयर का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ।

अभ्यास प्रश्न

12. मौखिक भाषा के महत्व पर प्रकाश डालिए ।
13. मौखिक भाषा से आप क्या समझते हैं ?
14. भाषा शिक्षण का स्वाभाविक क्रम क्या है ?
15. मौखिक भाषा के पांच महत्व को उदाहरण सहित समझाएं ।
16. नाट्य कला एवं कविता पाठ किस तरह से मौखिक भाषा के परिमार्जन में सहायक है?
17. प्रश्नोत्तर एवं वार्तालाप के अंतर को स्पष्ट करें ।
18. स्वतंत्र आत्मप्रकाशन का अवसर से आप क्या समझते हैं ?
19. मौखिक भाषा के परिमार्जन लिए अध्यापक किस तरह के शिक्षण विधियों एवं साधनों का प्रयोग कर सकता है ?

20. विषय सम्बंधित क्षेत्र में अधिगम वृद्धि के लिए मौखिक भाषा प्रयोग करने की रणनीति पर प्रकाश डालें।

1.8 सारांश

भाषा मानव समाज का सर्वाधिक महत्वपूर्ण आविष्कार है। ध्वनि के विविध स्वरों और प्रस्तुतीकरण के अन्यान्य रूपों के माध्यम से सृष्टि के समस्त प्राणी परस्पर सूचनाओं एवं भावनाओं का सम्प्रेषण करते हैं। कक्षा कक्ष में संवाद का अपना ही महत्व है क्योंकि कक्षा में संवाद के द्वारा ही अधिकाँश अधिगम संपन्न होता है। इसके अभाव में अधिगम की कल्पना ही संभव नहीं है । । यदि कक्षा में संवाद दोनों ही तरफ से (विद्यार्थी एवं शिक्षक) के तरफ से आवश्यकतानुसार ठीक ढंग से हो रहा है तो इस तरह का अधिगम सदैव बेहतर होता है। कक्षा में संवाद की प्राकृति को निम्न तरीके से समझा जा सकता है।

1. लोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति
2. अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है वह अपने सोच एवं विचार को एक दूसरे तक लेन- देन करना चाहता है। इस काम के लिए वह भाषा के दोनों रूपों का प्रयोग करता है। वाणी (Speech) व लिखित रूप (Written form)– जब व्यक्ति, ध्वनियों के माध्यम से, मुख के अवयवों के मदद से, उच्चरित भाषा का प्रयोग करते हुए अपने विचारों को प्रकट करता है तब उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहा जाता है। ऐसे तो बालक अनुकरण द्वारा मौखिक भाषा का प्रयोग स्वतः ही करने लगता है परन्तु विद्यालय में औपचारिक रूप से इस कौशल को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। विशेषकर भाषा के अद्यापक को इस बात का ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि वह मौखिक भाषा- कौशल को विकसित करने की दृष्टि से छात्रों को किस तरह से बोलना सिखाये और उनके मौखिक अभिव्यक्ति कौशल को क्या दिशा प्रदान करे

1.9 शब्दावली

1. **लोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति (Democratic Discourse Situation):** लोकतांत्रिक संवाद परिस्थितियाँ वो परिस्थितियाँ होतीं हैं जिनमें विद्यार्थी एवं शिक्षक को सामान अधिकार प्राप्त होते हैं।
2. **अलोकतांत्रिक संवाद परिस्थिति (Non-Democratic Discourse Situation) :** अलोकतांत्रिक संवाद प्रकृति विद्यार्थी केंद्रित न होकर शिक्षक केंद्रित होती है। इसमें विद्यार्थियों के स्थान पर शिक्षक की प्रधानता होती है।

3. **वाक्य शब्द और अक्षर (Sentence, word and letter) :** मौखिक भाषा वाक्यों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। वाक्य मौखिक भाषा के मौलिक इकाई है। मौखिक भाषा में यदि कभी शब्द या क्षर का एक इकाई के रूप में प्रयोग होता है तो वह भी वाक्य का स्थानपन्न होता है
4. **वाद- विवाद (Debate)** : पूर्व – निर्धारित विषय पर इसमें बालक विचारों का आदान प्रदान करते हैं। कुछ बालक विषय के पक्ष में और कुछ विपक्ष में अपने विचार प्रस्तुत करते हैं।
5. **हाव भाव एवं अंग संचालन :** हाव- भाव का तात्पर्य है बात करते हुए माथे की सिकुडन तथा शरीर के ने हिस्सों के हरकतों से कथ्य कपो अधिक स्पष्ट और भावपूर्ण बनाने का प्रयास करना। इसी प्रकार का प्रयास जब हाथों की अंगुलियां, मुट्ठी, बाजू और कन्धों की सहायता से होता है तो अंग- संचालन कहलाता है।

1.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कुमार, के. 2001, स्कूल की हिंदी, पटना: राजकमल।
2. चॉम्स्की, एन. 1957, सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स, दी हेग: मौटेन कं.।
3. चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर. लैंग्वेजेस 35.1.26-58
4. चॉम्स्की, एन. 1972, लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।
5. चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्ली: माध्यम बुक्स।
6. चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑप्रफ द थ्योरी ऑफ सिनटेक्स, कैंब्रिज: एम. आई. टी. प्रेस।
7. चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर।
8. चॉम्स्की, एन. 1988, लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑप्रफ नॉलेज, वैंफब्रिज, मास: एम. आई. टी.।
9. दुआ, एच. आर. 1985, लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।
10. हैबरमास, जे. 1998, ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ कम्युनिवेफशन, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
11. हैबरमास, जे. 1998, दी फिलॉसफिकल डिसकोर्स ऑप्रफ मॉडर्निटी, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
12. शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964 -1966, शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
13. नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।
14. पटनायक, डी. पी. 1981, मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुवेफशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

15. पटनायक, डी. पी. 1986, स्टडी ऑफ लैंग्वेजेज, ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।
16. रिचड्र्स, जे. सी. 1990, दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स, कैब्रिज :कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
17. सायर, डी. 1924, दी इपैफक्ट ऑ़फ बाइलिंगुलिज्मम ऑन इंटेलिजेंस, ब्रिटिश जर्नल ऑ़फ साइकोलॉजी 14:25-38
18. श्रीधर, के.के. 1989, इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुलिज्म,नयी दिल्ली, मनोहर।
19. तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगण), भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
20. यूनेस्को, 2003, एजुकेसन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड, यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।
21. व्योगोत्सकी, एल. एस. 1978, माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑ़फ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस, वैंफब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।
22. जमील, वी. 1985, रेस्पोंडिंग टू स्टूडेंट राइटिंग, टी. ई. एस. ओ. एल. त्रैमासिक, 19.1
23. इस वेबसाइट को जरूर देखें : http//www.languageindia.com

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. मौखिक भाषा के परिमार्जन लिए अध्यापक किस तरह के शिक्षण विधियों एवं साधनों का प्रयोग कर सकता है ?
2. मौखिक भाषा का मानव जीवन में क्या महत्व है ? प्रकाश डालिए ।
3. मौखिक भाषा के तत्व कौन –कौन से हैं ? स्पष्ट करें।

इकाई 2 - सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा, कक्षा-कक्ष में प्रश्नों का स्वरुप, प्रश्नों के प्रकार एवं शिक्षक की भूमिका

Discussion as Tool for Learning, the Nature of Questioning in the Classroom, Types of Questions and Teachers Role

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा
2.4 कक्षा- कक्ष में प्रश्नों का स्वरुप
2.5 प्रश्नों के प्रकार
2.6 शिक्षक का नियंत्रण
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 निबंधात्मक प्रश्न
2.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.1 प्रस्तावना

व्यक्ति बहुत सी ज्ञान की बातें एक दूसरे सुन कर जान पाता है और इस तरह का प्राप्त ज्ञान तुलनात्मक दृष्टि से स्थायी भी होता है । किसी भी भाषा का ज्ञान , बोध एवं उपयोग केवल कक्षागत परिस्थितियों में पाठ्यवस्तु के घटकों और भाषा तत्वों के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण नहीं होता । भाषा सजीव और संवेदनशील परम्परा है। वह वक्त समाज और परिस्थितियों के साथ जीती है और उन्हें गति प्रदान करती है। इसलिए भाषा का पूर्ण व्यावहारिक ज्ञान केवल पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन से , और परीक्षाएं प्राप्त कर के नहीं पाया जा सकता । किसी भी विषय को सीखने के लिए विभिन्न प्रकार के उपागमों का प्रयोग करना चाहिए । इन उपागमों में परिचर्चा एक अति महत्वपूर्ण उपागम है । प्रस्तुत इकाई में हम लोग परिचर्चा के महत्व एवं कक्षा –कक्ष में विभिन्न प्रकार के प्रश्नों के प्रयोग पर प्रकाश डाला गया है ।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा के महत्व को समझ सकेंगे।
2. कक्षा-कक्ष में प्रश्नों के विभिन्न स्वरुप को जान पाएंगे
3. प्रश्नों के विभिन्न प्रकारों के उपयोग के बारे में समझ पाएंगे ।
4. कक्षा- कक्ष में शिक्षक का नियंत्रण कैसा होना चाहिए जान पाएंगे।

2.3 सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा (Discussion as a tool for learning)

परिचर्चा का अर्थ है – किसी विषय के सभी पहलुओं पर विचार- विमर्श। परिचर्चा के लिए विषय सम-सामयिक घटनाओं और चर्चा में आये सन्दर्भों से चुना जा सकता है। इस प्रकार की गतिविधि के लिए अलग से समय निकालने या तैयारी की आवश्यकता नहीं होती। किसी दिन कक्षा में पहुँचाने पर आप यदि पायें कि विद्यार्थी किसी विषय विशेष पर चर्चा के लिए उत्सुक हैं तो परिचर्चा के शुरुआत की जा सकती है। यह विषय खेल, राजनीति , कोई विशेष घटना या निर्णय भी हो सकता है। परिचर्चा ले लिए ज़्यादा समय भी खर्च करने की आवश्यकता भी नहीं होती। शिक्षक चुने हुए विषयों पर विद्यार्थियों को अपने –अपने विचार प्रस्तुत करने के अवसर दें और अंत में अपने विचारों का समावेश करते हुए चर्चा का सार प्रस्तुत कर दें। ऐसी चर्चा अनेक बार कोई पाठ या प्रकरण पढते हुए भी सामने आ सकती है। आवश्यकता इस बात को समझने की है की ऐसी चर्चाएं या विचार विमर्श कभी भी व्यर्थ या समय की बर्बादी नहीं होते , अपितु विद्यार्थियों को विषय और भाषा ज्ञान के साथ साथ प्रस्तुतीकरण का अवसर भी प्रदान करते हैं। परिचर्चा के दौरान कुछ बातों का ध्यान रखा जाए तो इसे ज़्यादा उपयोगी बनाया जा सकता है। सबसे पहली बात यह की परिचर्चा का विषय किसी न किसी प्रकार से विद्यार्थियों से संबद्ध होना चाहिए और उनके लिए उपयोगी भी। दूसरी बात की विद्यार्थियों को चर्चा के विषय से भटकने न देने के लिए शिक्षक को पूर्णतः सचेत रहना चाहिए। यदि विद्यार्थी अपने विचार प्रस्तुत करते हुए विषय से भटक रहें हों तो शिक्षक को हस्तक्षेप करना चाहिए और चर्चा को पुनः विषय पर केंद्रित करना चाहिए। तीसरी बात कि सभी विद्यार्थियों की अपनी विचार रखने की स्वतन्त्रता और पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए। जो पक्ष में जो कुछ कहना चाहें वह पक्ष में अपनी बात रखे , किन्तु विपक्षियों को भी हतोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। अंतिम बात प्रश्नोत्तर , विचार विनिमय और स्पस्टीकरण जैसी परिचर्चा के सभी गतिविधियों के दौरान प्रतिभागियों की भाषा सधी हुयी , आवेश एवं प्रतिशोध से मुक्त और संयत होनी चाहिए , ताकि चर्चा किसी परिणाम तक पहुंचे और सभी पक्षों के प्रतिभागियों को सत्य का परिचय मिल सके।

अभ्यास प्रश्न

1. परिचर्चा से आप क्या समझते हैं ?
2. परिचर्चा के लिए आवश्यक तत्वों का उल्लेख करें।
3. परिचर्चा के दौरान किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ।

2.4 कक्षा – कक्ष में प्रश्नों की प्रकृति (The nature of questions in classroom)

प्रश्न पूछने का कौशल कक्षा – कक्ष की परिस्थितियों हेतु एक बहुत ही महत्वपूर्ण कौशल है। इस कौशल के द्वारा अध्यापक कक्षा में रुचि बनाए रखने के साथ- साथ विद्यार्थियों के ज्ञान एवं निष्पत्ति का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन भी करता है। हमारे शिक्षा व्यवस्था में विद्यार्थियों की निष्पति को जानने और समझने के लिए अध्यापक यदि केवल औपचारिक माध्यम (सत्रांत परीक्षा) पर निर्भर रहेगा तो वह उसके व्यक्तित्व के अन्य पहलुओं का निरपेक्ष मूल्यांकन कर पाने में शायद ही सक्षम हो पाए। इसलिए अध्यापकों को कक्षा-कक्ष परिस्थितियों में भे भिन्न भिन्न तरह के प्रश्न पूछ कर उनके आत्मविश्वास में वृद्धि के साथ- साथ आत्म प्रकाशन के सहज अवसर भी प्रदान करने चाहिए । हम यह बात ठीक तरीके से जानते हैं कि आधुनिक समय में व्यक्ति अपने मनोभावों का प्रकटीकरण भाषाके माध्यम से दो रूपं में क्र सकता है।

१. मौखिक भाषा
२. लिखित भाषा

मानव प्रधानतः अपनी अनुभूतियों तथा मनोभावों की अभिव्यक्ति सहजता से मौखिक भाषा में ही करना पसंद करता है। लिखित भाषा, गौण तथा उसकी प्रतिनिधि मात्र है, क्योंकि भावों की अभिव्यक्ति का साधन साधारणतः सर्वप्रथम उच्चारित भाषा ही होती है। इसलिए भी विद्यार्थियों से प्रश्न पूछते रहना चाहिये जिससे कि उनके मनोभावों का प्रकाशन होते रहे। विद्यालयों में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, आदि विभिन्न भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त भी विभिन्न विषय यथा भूगोल, इतिहास , विज्ञान पढाये जाते हैं। इन सभी विषयों को पढ़ाने के लिए अध्यापक पुस्तक पढवा कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं। छात्र यदि कुछ भी बातचीत करता है तो सामान्यतया उसे डांट दिया जाता है। मनोवैज्ञानिकों और भाषाशास्त्रियों ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह मत व्यक्त किया है कि बोलचाल के द्वारा ही विद्यार्थी ज़ल्दी सीखता है। प्रश्नोत्तर विधि की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि इसके द्वारा विद्यार्थियों को बोलने का अवसर मिलता है।

कक्षा- कक्ष में प्रश्न पूछने का उद्देश्य (Objective of questioning in classroom): ऐसे तो जीवन के हर एक क्षेत्र में किसी भी कार्य को करने के बाद इस बात की जांच की जाती है कि उस कार्य में कर्त्ता को कितनी सफलता मिली है , परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में यह और भी ज़रूरी हो जाता है कि शिक्षण

प्रक्रिया को जिस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पूरा किया गया है उन उद्देश्यों की पूर्ति में कितनी सफलता मिली है एवं उन उद्देश्यों की प्राप्ति किस स्तर तक हुयी है। किसी भी विषय में निर्धारित ज्ञान , कौशल तथा योग्यताओं को तुरंत पता लगाने के लिए कक्षा में प्रश्न पूचना आवश्यक होता है। भाषा- शिक्षण में कक्षा में प्रश्न पूछने की आवश्यकता निम्न रूप में स्पष्ट कर सकते हैं

१. **छात्रों की कमजोरियों को दूर करने एवं उनकी प्रगति में सहायता के लिये (To eliminate the weakness of student and for their development):** कक्षा में अध्यापक जब प्रश्न पूछता है तो विद्यार्थी एवं अध्यापक दोनों को किस बिंदु पर और अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता है का नुमान चल जाता है एवं अध्यापक के मार्गदर्शन में विद्यार्थी विशिष्ट अभ्यास कर अपनी कमजोरियों को दूर कर भाषा सम्बंधित विशेष योग्यताओं को विकसित करने के लिए प्रयासशील होते है।

२. **छात्रों को अध्ययन के लिए प्रेरित करना(To motivate the students for study) :** प्रश्न पूछने से विद्यार्थियों को पढ़ाई करने की भी प्रेरणा मिलती है। जो विद्यार्थी नियमित रूप से अध्ययन कार्य नहीं करते अध्यापक को उन्हें विशेष रूप से प्रश्न पूचना चाहिए जिससे उनके अंदर अध्ययन की आकांक्षा बनी रहे।

३. **शिक्षण विधियों के उचित चुनाव एवं प्रयोग में सहायक** : शिक्षण प्रक्रिया एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है। शिक्षण उद्देश्य के निर्धारण के पश्चात उनकी प्राप्ति के लिए अध्यापक शिक्षण कार्य को क्रियान्वित कर्ता है। शिक्षण क्रिया को कुशलता पूर्वक संपन्न करने के लिए अध्यापक विभिन्न प्रकार के शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है। कक्षा में विभिन्न तरह के प्रश्न पूछने से विद्यार्थियों के निष्पत्ति का अनुमान शिक्षक हो जाता है।

४. **शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन में सहायक :** कक्षा में प्रश्न पूछने के दौरान शिक्षक को विद्यार्थी के अभिरूचि के क्षेत्र का पता चल जाता है। जिससे कि वह आसानी से शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।

अभ्यास प्रश्न

4. कक्षा- कक्ष में प्रश्न पूछने के उद्देश्यों पर प्रकाश डालें ?
5. कक्षा- कक्ष में प्रश्नों की प्रकृति किस प्रकार की होनी चाहिए ? प्रकाश डालें ।
6. कक्षा कक्ष में प्रश्न पूछना किस प्रकार से छात्रों की कमजोरियों को दूर करने एवं उनकी प्रगति में सहायक सिद्ध हो सकता है ?

2.5 प्रश्नों के प्रकार एवं शिक्षक का नियंत्रण (Types of Questions and Teachers control)

शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों के व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाना है ताकि वे अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का अधिकाधिक विकास कर सकें। शिक्षण इस उद्देश्य की साधना की प्रक्रिया है। शिक्षण प्रक्रिया अपने लक्ष्य एवं उद्देश्य में कितनी सफलता प्राप्त किया है इसका सटीक ज्ञान होना अति आवश्यक है। विद्यार्थियों को ठीक प्रकार का ज्ञान हुआ है या नहीं इसका पता लगाने के लिए सबसे सरल एवं सीधा माध्यम कक्षा में पूछा जाने वाला प्रश्न है। इन प्रश्नों की सहायता से शिक्षक कक्षा में अपना नियंत्रण भी स्थापित करता है। प्रश्नों की सहायता से शिक्षक कक्षा में अनुशासन के साथ ज्ञान वर्धन का कार्य भी करता है।

कक्षा में मूलतः निम्न तीन के प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

i. **विचारात्मक प्रश्न :** विचारात्मक प्रश्न मूलतः निबंधात्मक प्रश्न होते हैं। इन प्रश्नों का कोई एक उत्तर नहीं होता है। अपने विचार प्रस्तुत करने की इस प्रकार के प्रश्नों मं पूर्ण स्वतंत्रता होती है।
ii. **विस्तृत उत्तर वाले निबंधात्मक प्रश्न :** ऐसे प्रश्नों में स्वतंत्र अभिव्यक्ति कि लिए स्वतंत्रा होने के साथ साथ प्रश्नों के उद्देश्य भी स्पष्ट होते हैं और उत्तर की सीमा भी बहुत हद तक निर्धारित रहती है।
iii. **भाषा परीक्षा एवं वस्तुनिस्ठ प्रश्न:** केवल निबंधात्मक एवं लघु उत्तरात्मक प्रश्नों से ही भाषा एवं साहित्य की परीक्षा नहीं की जा सकती है। वस्तु निष्ठ प्रश्नों के ऊतर में स्वतंत्र भाव या विचार प्रकाशन की छूट नहीं रहती है।

प्रश्नोत्तर विधि के लाभ (Advantages ofquestion answer method): प्रश्नोत्तर विधि का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इससे विद्यार्थियों में आत्मविश्वास की वृद्धि के साथ-साथ उनके मौखिक अभिव्यक्ति का कौशल भी बेहतर होता है। इसलिए विद्यार्थियों से उनकी रुचि, अनुभव तथा योग्यता के आधार पर ही प्रश्न पूछे जाने चाहिए। प्रश्न वार्तालाप के रूप में भी पूछे जा सकते है। प्रश्न की भाषा सरल स्पष्ट तथा विचारोदबोधक होनी चाहिए। प्रश्नोत्तर विधि के निम्न लाभ हैं

1. विद्यार्थी में अपने अनुभव , भाव तथा विचारों को को शुद्ध , स्वाभाविक, स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण शब्दों में बोलकर व्यक्त करने की योग्यता उत्पन्न करता है।
2. संकोच एवं झिझक को दूर कर दुसरे के सम्मुख युक्तिपूर्ण ढंग से अपना मत व्यक्त क्र सकने की कुशलता पैदा करता है।
3. उत्तर देते समय अपनी बात तार्किकता एवं मधुरता से के साथ रखने के हुनर का विकास होता है।
4. इससे बोलचाल के सामन्य दोष का निवारण भी होता है।

कक्षा में शिक्षक की भूमिका (The role of teacher in classroom): बच्चों को समुचित शिक्षा तथा सफल अध्यापन में शिक्षक की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है । अतः यंहां हम शिक्षक की भूमिका निम्न स्तंभों में देखने का प्रयास करेंगे ।

i. कक्षा के अंतर्गत शिक्षक की भूमिका सर्वप्रथम एक मनोवैज्ञानिक (Psychologist) के रूप में होती है । शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह कक्षा में उपस्थित बच्चों की आवश्यकताओं (Necessities) , प्रेरणाओं (Motivations) एवं मनोवृतियों (Attitude) की जानकारी रखे । शिक्षक बच्चों को समझने में जिस सीमा तक सफल होते हैं उसी सीमा तक कक्षा में उनका नियंत्रण एवं अध्यापन प्रभावी होता है तथा बचे शिक्षण से लाभान्वित भी हो पाते हैं ।

ii. शिक्षक की भूमिका एक सलाहकार (Counsellor) की भांति भी है । ऐसे बच्चे भी होते हैं जो अपने आप को उपेक्षित तथा तिरस्कृत महसूस करते हैं । इन्हें हम पृथक बालक (Isolated Children) कहते हैं । अतः एक सफल शिक्षक ऐसे बच्चे की सहायता करता है तथा उसके समायोजन समस्या (Adjustment Problem)के समाधान का प्रयास करता है । इसी तरह पढ़ाई छोडना (Drop Out), गैहाजिर होना (Absenteeism)आदि के कारणों को जानने तथा इनके निराकरण के लिए सफल शिक्षक प्रयास करता है ।

iii. कक्षा के अंतर्गत शिक्षक सबसे महत्वपूर्ण भूमिका नेता की होती है । शिक्षक अपने वर्ग का नेता होता है । नेतृत्व के कई प्रकार होते हैं जिनमें सत्ताधारी नेतृत्व , प्रजातांत्रिक नेतृत्व एवं न अड़चन डालने वाला नेतृत्व मुख्य है । शिक्षक किस प्रकार के नेतृत्व की भूमिका अदा करता है, इस बात पर उसके अध्यापन की प्रभावशीलता निर्भर करती है । इस सम्बन्ध पर अनेक प्रयोगात्मक अध्ययन किये गए हैं और यह देखने का प्रयास किया गया है कि किस प्रकार का नेतृत्व बच्चों को सही शिक्षा के लिए उपयोगी है ।

सत्ताधारी नेतृत्व का अर्थ ऐसे नेतृत्व से है, जिसमें शिक्षक सब कुछ होता है । शिक्षक ही विद्यार्थियों को आदेश देता है और विद्यार्थी उसके आदेशों का पालन करते हैं । इस तरह के नेतृत्व में शिक्षक सक्रिय होता है और शिक्षार्थी निष्क्रिय , दूसरी ओर प्रजातांत्रिक नेतृत्व के अंतर्गत अधिकारों का विकेन्द्रीकरण (Decentralisation)पाया जाता है । शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध , सहयोग एकता का भाव आदि विशेषताएं देखी जाती है । न अड़चन डालने वाला नेतृत्व का तात्पर्य ऐसे नेतृत्व से है जिसके अंतर्गत शिक्षक नेता के रूप में केवल नाम का रहता है वह बच्चों को पूरी स्वतंत्रता दे देता है और उनके व्यवहारों में किसी तरह की बाधा अपनी ओर से नहीं डालता है ।

iv. भिन्न – भिन्न प्रकार के नेतृत्व के परिणामों को देखने के लिए कई सारे प्रयोगात्मक अध्ययन (Experimental Studies) किये गए । खास कर प्राजातान्त्रिक नेतृत्व (Democratic Leadership) तथा सत्ताधार नेतृव (Authoritarian leadership) के प्रभावों को देखने के लिए लेविन , लिपिट तथा ह्वाईट(Levin, Lipit and White, 1939) तथा लिपिट एवं ह्वाईट (Lipit and White, 1943) ने बच्चों पर अध्ययन किया , उन्होंने देखा कि सत्ताधारी नेतृत्व के अंतर्गत

बच्चों के व्यवहार प्रजातांत्रिक नेतृत्व से भिन्न हुए। शिक्षा को ध्यान में रखते हुए प्रजा तांत्रिक नेतृत्व पर बल दिया गया है। शीन (Schein, 1979) के अनुसार बड़े संगठन के लिए प्रजातांत्रिक नेतृत्व तथा छोटे संगठन के लिए सत्ताधारी नेतृत्व अधिक सफल है। न अड़चन डालने वाला नेतृत्व (Laisseiz faire leadership) किसी भे संगठन के लिए उपयुक्त नहीं है। यह बात वर्ग या क्ष परिस्तिती में भी शिक्षक की भूमिका पर भी लागू हो सकती है।

v. कक्षा में शिक्षक एक विशेषज्ञ (Expert) की भूमिका में होता है। अतः शिक्षक को अपने अध्यापन विषय की पर्याप्त जानकारी होनी चाहिए ताकि छात्रों को अध्यापन से अधिक से अधिक लाभ मिल सके। शिक्षक को शिक्षा के उद्देश्य से अवगत होना चाहिए कि शिक्षा वर्तमान समय में बाल केंद्रित (Child Centred) हो चली है ।और इसका उद्देश्य है कि बालक का सर्वांगीण विकास (All-round Development) हो अर्थात मानसिक विकास (Mental Development) , शारीरिक विकास (Physical Development) , हस्तकौशल विकास (Hand skill development) तथा हृदय विकास का समुचित रूप से हो सके।

vi. शिक्षक का एक आवश्यक गुण है स्नेह, सहानुभूति , प्यार, क्षमाशीलता (Forgiveness) तथा त्याग (Sacrifice) । ये सभी गुण वास्तव में एक माता के गुण कहलाते हैं। इसी अर्थ में कहा जाता है कि कक्षा में शिक्षक को अपने छात्रों के साथ ऐसा सद्भाव रखना चाहिए जैसा माताएं अपने बच्चों के प्रति रखती है। लेकिन माता की भूमिका में शिक्षक को संवेगों (Emotions) पर नियंत्रण भी रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

7. कक्षा में शिक्षक की भूमिका (The role of teacher in classroom) पर प्रकाश डालें।
8. कक्षा में विभिन्न प्रकार के नेतृत्व पर प्रकाश डालें ?
9. शिक्षक की भूमिका एक सलाहकार (Counsellor)की भांति होती है। इस कथन की व्याख्या करें
10. कक्षा में मूलतः कितने प्रकार के प्रश्न पूछे जाने चाहिए ? उदाहरण सहित समझाएं।

2.6 सारांश

किसी भी भाषा का ज्ञान , बोध एवं उपयोग केवल कक्षागत परिस्थितियों में पाठ्यवस्तु के घटकों और भाषा तत्वों के ज्ञान और अभ्यास से परिपूर्ण नहीं होता। भाषा सजीव और संवेदनशील परम्परा है। वह वक्त समाज और परिस्थितियों के साथ जीती है और उन्हें गति प्रदान करती है। इसलिए भाषा का पूर्ण व्यावहारिक ज्ञान केवल पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन से , व्याकरण के अभ्यास से और परीक्षाएं प्राप्त कर के नहीं पाया जा सकता। भाषा सीखने के लिए विभिन्न प्रकार के उपागमों का प्रयोग करना चाहिए। इन

उपागमों में परिचर्चा एक अति महत्वपूर्ण उपागम है। विद्यार्थियों को ठीक प्रकार का ज्ञान हुआ है या नहीं इसका पता लगाने के लिए सबसे सरल एवं सीधा माध्यम कक्षा में पूछा जाने वाला प्रश्न है। इन प्रश्नों की सहायता से शिक्षक कक्षा में अपना नियंत्रण भी स्थापित करता है। प्रश्नों की सहायता से शिक्षक कक्षा में अनुशासन के साथ ज्ञान वर्धन का कार्य भी करता है।

2.7 शब्दावली

1. **परिचर्चा :** किसी विषय के सभी पहलुओं पर विचार- विमर्श करना
2. **सत्ताधारी नेतृत्व :** सत्ताधारी नेतृत्व का अर्थ ऐसे नेतृत्व से है, जिसमें शिक्षक सब कुछ होता है। शिक्षक ही विद्यार्थियों को आदेश देता है और विद्यार्थी उसके आदेशों का पालन करते हैं। इस तरह के नेतृत्व में शिक्षक सक्रिय होता है और शिक्षार्थी निष्क्रिय।
3. **प्रजातांत्रिक नेतृत्व** : प्रजातांत्रिक नेतृत्व के अंतर्गत अधिकारों का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) पाया जाता है। शिक्षक तथा शिक्षार्थियों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध , सहयोग एकता का भाव आदि विशेषताएं देखी जाती है।
4. **अड़चन डालने वाला नेतृत्व (Laisseiz faire leadership) :** न अड़चन डालने वाला नेतृत्व का तात्पर्य ऐसे नेतृत्व से है जिसके अंतर्गत शिक्षक नेता के रूप में केवल नाम का रहता है वह बच्चों को पूरी स्वतंत्रता दे देता है और उनके व्यवहारों में किसी तरह की बाधा अपनी ओर से नहीं डालता है।

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, पी. और संजय कुमार 2000 (संपादक), हिंदी देशकाल में
2. चॉम्स्की, एन. 1957, सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स, दी हेग: मौटेन कं.।
3. चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर. लैंग्वेजेस 35.1.26-58
4. चॉम्स्की, एन. 1972, लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।
5. चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्ली: माध्यम बुक्स।
6. चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑफ़ द थ्योरी ऑफ सिनटेक्स, कैंब्रिज : एम. आई. टी. प्रेस।
7. चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर।
8. चॉम्स्की, एन. 1988, लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑफ़ नॉलेज, वैंफब्रिज, मास: एम. आई. टी.।
9. दुआ, एच. आर. 1985, लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।

10. हैबरमास, जे. 1998, ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ कम्युनिवेफशन, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
11. हैबरमास, जे. 1998, दी फिलॉस्फिकल डिसकोर्स ऑफ़ मॉडर्निटी, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
12. कुमार, के. 2001, स्कूल की हिंदी, पटना: राजकमल।
13. शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964 -1966, शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
14. नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।
15. पटनायक, डी. पी. 1981, मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुवेफशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
16. पटनायक, डी. पी. 1986, स्टडी ऑफ लैंग्वेजेज, ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।
17. रिचड्र्स, जे. सी. 1990, दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स, कैब्रिज :कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
18. सायर, डी. 1924, दी इपैफक्ट ऑफ़ बाइलिंगुलिज्मम ऑन इंटेलिजेंस, ब्रिटिश जर्नल ऑफ़ साइकोलॉजी 14:25-38
19. श्रीधर, के.के. 1989, इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुलिज्म,नयी दिल्ली, मनोहर।
20. तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगणद्), भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
21. यूनेस्को, 2003, एजुवेफशन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड, यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।
22. वायगोत्सकी , एल. एस. 1978, माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑफ़ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस, वैंफब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।
23. जमील, वी. 1985, रेस्पोंडिंग टू स्टूडेंट राइटिंग, टी. ई. एस. ओ. एल. त्रैमासिक, 19.1
24. इस वेबसाइट को जरूर देखें : http//www.languageindia.com

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. सीखने के उपकरण के रूप में परिचर्चा से आप क्या समझते हैं ?
2. कक्षा- कक्ष में प्रश्नों का स्वरुप पर प्रकाश डालें।
3. प्रश्नों के प्रकार एवं शिक्षक का नियंत्रण से आपका क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट करें।
4. कक्षा में शिक्षक की भूमिका (The role of teacher in classroom) पर प्रकाश डालें।

इकाई 3- विषय क्षेत्र में पठन कार्य : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में , अर्थ प्रकाशक एवं विवरणात्मक विषय वस्तु, संक्षिप्तीकरण विषय वस्तु, हस्तांतरण विषय वस्तु व चिंतनपरक विषयवस्तु की प्रकृति, स्कीमा सिद्धांत

Reading in the content areas: Social Science, Science, Science, Mathematics and Literature of relevant languages, nature of Expository texts vs. Narrative texts, Transactional texts vs. Reflexive texts, schema theory, Text structures; examining content area textbooks; reading strategies for children- note making, summarizing

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 पठन कौशल की अवधारणा
3.4 पठन प्रक्रिया का अभिप्राय
3.5 विषय क्षेत्र में पठन कार्य : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में
3.6 अर्थ प्रकाश विषय वस्तु बनाम विवरणात्मक विषय वस्तु
3.7 हस्तान्तरण विषय वस्तु बनाम चिंतन परक विषय वस्तु (Reflective Text)
3.8 सारांश
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

भाषा के मूल चार कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) में से पढ़ना (पठन) एक महत्वपूर्ण क्रिया है। इस कौशल में बालक लिखित या मुद्रित पाठ्यांश वर्णों, शब्दों, वाक्यों या अनुच्छेदों को जोर-जोर से बोलकर या मन में पढ़कर उनका भाव ग्रहण करता है। यदि दिए गये अनुच्छेद को पढ़ने के बाद उसमे से प्रश्न पूछे जाए और बालक अनुकूल उत्तर नहीं दे पाता है तो यह इस बात को स्पष्ट करता है कि बालक ने अनुच्छेद का वाचन ही किया है, पठन नही। पठन-सामग्री के अन्तः भाव को समझकर दूसरों को समझा सकने मे सफल होना ही पठन का मुख्य उद्देश्य है। अर्थात किसी लिखित या मुद्रित पाठ्य वस्तु, भाषा या चित्र को देखकर उसके भाव या आशय को समझना या उसका अर्थ ग्रहण करना ही पठन (Reading) कहलाता है।

3.2 उद्देश्य

1. विद्यार्थी पढ़ने के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. विभिन्न विषयों के सन्दर्भ में पढ़ने के महत्व को जान सकेंगे।
3. विभिन्न विषयक्षेत्र में पढ़ने की अवधारणा को समझ सकेंगे।
4. पठन प्रक्रिया को समझ सकेंगे।

3.3 पठन कौशल की अवधारणा (संप्रत्यय) (Concept of Reading)

पठन कौशल को समझने हेतु इसके मुख्य अवयवों को समझना अतिआवश्यक है। यह अवयव हैं- शब्दों को पहचानना तथा समझ कर पढना। समझकर पढना तभी संभव हो पायेगा जब हम शब्दों के अर्थ समझते हों। यह एक स्थापित तथ्य है कि पढना सीखने पर लिखना और सरल हो जाता है। अतःपढ़ने के समुचित कौशल ही विद्यार्थियों की प्रगति के निर्धारक हैं। हम अक्सर यह देखते हैं कि कक्षा पाचवीं तक के बच्चे भी ठीक से पढ़ नहीं पाते हैं। यह बात केवल हमारे देश पर लागू नहीं होती वरन् , अमेरिका एवं कई अन्य विकसित देश भी बच्चों की पढ़ने की अक्षमता कों लेकर चिंतित है। यदि हम अमेरिका के बारे में जानें तो यह बात सामने उभर कर आती है कि वहां पठन कौशल में सुधार हेतु "नो चाईल्ड लैफ्ट बिहाइंड (No child left behind) " 2002 के समर्थन मे रीडिंग पहले कार्यक्रम लाया गया था, जिसमें वहाँ पर राज्यों को प्राथमिक कक्षाओं के पठन कौशल विकास पर वैज्ञानिक तरीकों को अपनाने हेतु सहायता दी जाती है।

3.4 पठन प्रक्रिया का अभिप्राय (The process of reading process)

जो लोग पढ़ नही सकते उनके लिए पढ़ना एक रहस्य या आश्चर्यजनक होता है। कई साल पहले विशेषज्ञों को भी यह मालूम नही था कि जब बच्चा पढ़ना सीखता है, तो दरअसल करता क्या है ? अपने अनुभव और परम्परा के आधार पर शिक्षकों ने कुछ विधियों की खोज की जैसे वर्णमाला विधि, उच्चारण विधि, शब्द विधि इत्यादि। पढ़ने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है अंकित सूचना को ग्रहण करना। हमारी आंखे जब अक्षरों, विराम चिन्हों, शब्दों और शब्दों के बीच छोड़ी गयी जगहों का मुआयना करती है, तो हमारा मस्तिष्क इस ग्राफिक (हाथ से लिखि गई या छपी हुई) सामग्री की सम्पूर्ण मात्रा पर ध्यान नही देता। यदि ऐसा होता तो छोटी-छोटी सूचनाओं पर गौर करने से मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता और अधिकांश लोग जिस रफ्तार से पड़ते है, वह असम्भव हो जाता है। पारम्परिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले कई बच्चो के साथ यही होता है। वे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाईयों में तोड़ता है और इस तरह शब्दों का अर्थ ग्रहण करने हेतु मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज्यादा बोझ डाल देती है। एक प्रवीण पाठक की आखें ऐसा बोझ पड़ने नही देती, क्योंकि वे पेपर पर अंकित ग्राफिक सूचनाओं के सीमित, चुने हुए अंश से जूझती है। प्रवीण पाठक शब्द के पूरे अक्षरों व वाक्यों के सारे शब्दों पर ध्यान नही देता। पढ़ते समय पाठक की आंखें सामग्री के एक छोटे से अंश पर गौर करती है, शेष वह अनुमान के जरिये ग्रहण करता है, जो समझ से पूर्ण होता है। इस अनुमान का आधार होता है -अक्षरों की आकृतियाँ, शब्द, उनके साथ संयोजन और सामान्य दुनिया से पाठक का पहले से मौजूद परिचय। पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नही है, उसमे कई प्रक्रियाएं शामिल है। पढ़ते समय भाषा के उपयोग से जुड़े तीन तरह के संकेत हमारे ध्यान में आते है –

i. अक्षरों की आकृतियाँ और उनसे जुडी ध्वनियाँ।
ii. शब्दों के अर्थ।
iii. वाक्य विन्यास।

पढ़ने की पूरी प्रक्रिया में अक्षर पहचान महत्वपूर्ण है। इसके पीछे मान्यता यह भी है कि लिखित भाषा अक्षरों का समूह है, जिसमे प्रत्येक अक्षर एक ध्वनि का प्रतिनिधित्व करता है। अक्षर को देख कर उससे जुडी ध्वनि का उच्चारण कर देना पढ़ना नही माना जाता है। वास्तव में पढ़ने का सर्वोत्तम तरीका पढ़ना है पढ़कर ही पढ़ना सिखा जा सकता है। जैसे – साईकिल व उसे चलाने के बारे में बारीक़ जानकारी होने का यह अर्थ नही कि व्यक्ति के द्वारा साईकिल चला ली जाएगी। साईकिल चलाने के लिए तो उस पर बैठकर व चला कर ही सिखा जा सकता है। ठीक जैसे तैरना सीखने के लिए पानी में उतरना ही पड़ता है। निष्कर्षतः पहले दिन से ही पढ़ाने की सार्थक सामग्री होना आवश्यक है। यह सार्थकता उस विद्यार्थी के संदर्भ में आंकी जानी चाहिए, जो उस सामग्री का पाठक है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि पढ़ने के लिए दी जाने वाली सामग्री किस भाषा में है। जिस भाषा में सामग्री उपलब्ध कराई जा रही है, उस भाषा से बालक परिचित है। भाषा का समग्र रूप तो बालक के इस्तेमाल में उभरता है, चाहे वह लिखने में हो, बोलने में हो या पढ़ने में। अतः बच्चे को भाषा के अधिकाधिक प्रयोग के मौके मिलने चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. भाषा के मुख्य कौशल कौन-कौन से है ?
2. पढ़ने की प्रक्रिया से आपका क्या अभिप्राय है ? स्पष्ट करें।
3. छोटे बालकों के पठन अवबोध के समय शिक्षक कोकिस प्रकार की चुनौतियों का सामना करना पड़ता है ?

3.5 विषय क्षेत्र में पठन कार्य : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में

कहने की जरूरत नहीं है कि पढ़ने के कौशल का सीधा संबंध बच्चों की संप्राप्ति से होता है। बच्चा जब पढना नहीं जानता है तो उसमें लिखित सामग्री के प्रति अरूचि पैदा होती है। यह अरूचि पढ़ने के कौशल में और कमी करती है। परिणाम पढाई में पिछड़ना, हीनता से ग्रसित होना और अंत में विद्यालय छोड़ देना है। यह एक अघोषित तथ्य समझा जा सकता है कि यदि विद्यार्थी में पढ़ने के समुचित कौशल नहीं है तो वह कैसे कोई गद्यांश पढ और लिख सकता है ? कैसे वह विज्ञान में संघनन या वाष्पीकरण जैसी प्रक्रिया स्पष्ट कर सकता है ? कैसे वह भूगोल के पाठों को समझ सकता है ? और कैसे वह गणित के इबारती प्रश्न हल कर सकता है ? कैसे वह इतिहास की घटनाओं का अपने शब्दों में वर्णन कर पायेगा । कई बार बच्चे जोड़-घटाने, भाग की क्रियाएँ तो कर सकते हैं एक कारण समझकर पढना न आना होता है यह तथ्य गणित के साथ ही नहीं वरन् सभी विषयों के साथ लागू होता है।

सामान्यतः मान लिया जाता है कि प्राथमिक स्तर कक्षा पाँच उत्तीर्ण करते ही बच्चों में पठन कौशल में वृद्धि की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह समुचित स्तर की होती है। यह मिथक है क्योंकि विद्यालयों में इस कौशल के मापन के समुचित उपकरण अपनाए ही नहीं जाते है, जिसके कारण बच्चों को सुधार के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। साथ ही यह भी चिंतनीय है कि हमारे देश में अध्यापक पठन कौशल के मूल्यांकन के लिए प्रशिक्षित नहीं होते हैं। यह तथ्य राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी उल्लिखित है।

सामान्यतः विद्यालयों में अध्यापकों को बच्चे पुस्तक की कोई गद्यांश या पद्यांश पढकर सुनाते है, जिससे अध्यापक पठन कौशल का निर्णय कर देते हैं। यह बहुत ही सतही प्रक्रिया है व भ्रामक एवं अनुपयोगी है। पठन कौशल के सुधार कार्यक्रम हेतु विद्यालयों में स्थान ही नहीं दिया जाता है। इसे अभिलेखित करना भी आवश्यक है क्योकि बच्चों के लिखित परीक्षाओं में दिए गए उत्तर इस बात के पर्याप्त संकेतक होते है कि उन्हें सीखा हुआ लिखने में परेशानियाँ हैं जो कि पढ़ने के समुचित कौशल होने के कारण उत्पन्न हुई होती हैं।

यह मान्यता कि कथा-उपन्यास पढना समय नष्ट करना है पठन को हतोत्साहित करने का बडा कारण है। पढ़ने के कौशल लिए रोचक व विविधापूर्ण वाहुल्यता में उपलब्ध सामग्री की आवश्यकता है। पढ़ने के कौशल के विकास को तीन चरणों में देखा जा सकता है।

प्रथम चरण में उसकी बातचीत की भाषा के कौशल सुनने व बोलने के कौशलों को सवंर्धित करना आवश्यक है। कक्षाओं में बातचीत, कहानी कहना, सुनना-सुनाना, सुनकर निष्कर्ष प्रस्तुत करना, चित्रों से कहानी कहना, कविता सुनना, लयात्मक कविता बनाना जैसे कार्यक्रम होने चाहिए। इन प्रक्रियाओं से बच्चों की शब्दावली विस्तारित होती है। शब्दों पर चर्चा करना जैसे- आम पर, शहर पर, नदी पर, इत्यादि-इत्यादि। ध्वनियों का समझकर पढ़ने की क्षमता से गहरा संबंध है।

द्वितीय चरण में शब्द पहचान व अक्षर ज्ञान के बाद, वाक्य वाचन हो सकता है। इसमें लय व ध्वनि का खास ध्यान रखा जाना चाहिए। इस चरण में भी प्रथम चरण की गतिविधियाँ जारी रखी जानी चाहिए। वाक्य एवं दृष्टांत ऐसे होने चाहिए, जो दैनिक जीवन से हों। ऐसे होने चाहिए, जो दैनिक जीवन से हों। ऐसे वाक्य अपनेपन व जुडाव का अहसास देते हैं। मानक भाषा और मानक शब्दों पर शुरूआती चरण में अत्यधिक जोर देना पठन दक्षता के विकास में बाधक हैं, तथापि बच्चे के शब्द भंडार के विकास पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। लेकिन यह शब्द भंडार लिखाकर, रटाकर नहीं वरन् दैनिकचर्या का हिस्सा होना चाहिए। पढते समय कोई भी पाठक यदि प्रचलित शब्दावली पाता है तो पढ़ने और समझने की गति बढ जाती है जो उसे लिखित सामग्री से जोड़कर रखती है।

पुस्तकों का चयन एक विशिष्ट क्षेत्र है जिस पर ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। साथ ही पठन दक्षता संवर्धन हेतु भाषा के पाठ्यक्रम की पुस्तकों से इतर कहानी, चित्रकथा, चित्रकहानी की पुस्तकें ली जाएं। कहानियाँ लंबी नहीं होनी चाहिए। इन कहानियों के पात्रों पर चर्चा की जाएं बच्चों को अपनी कहानी या किस्सा लिखने और कहने हेतु अवसर दिए जाएं।

विभिन्न विषयों की पुस्तकें चुनते समय उनमें भाषा की सरलता, सहजता पर खास ध्यान दिया जाए। यदि पुस्तक में सामग्री की भाषा कठिन है तो उसे अध्यापक वैकल्पिक रूप से सरल भाषा में लिखवाएँ या ऐसे पाठों को चाहे विषय कोई भी हो को छोड़ने या किसी अन्य पुस्तक से लिया जाए, अभ्यास हेतु पुस्तक के स्थान पर एक पृष्ठ की कहानी या कोई घटना दी जा सकती है। यह छूट अध्ययपकों को दी जानी आवश्यक है।

केवल भाषा ही नहीं, अन्य विषयों के माध्यम से भी पठन कौशल के विकास पर ध्यान दिया जाना चाहिए। विश्लेषण करने, गद्यांशों का सारांश लिखने, उन पर चर्चा करने जैसी गतिविधियां की जानी चाहिए। इतिहास में केवल वह तिथियाँ दी जाएं, जो अति महत्वपूर्ण हों वरना इतिहास में घटनाएँ कम व तिथियाँ अधिक होने से प्रारंभिक कक्षा के बच्चों में पढ़ने में अरूचि पैदा हो सकती है। लियो नार्डो डा विन्सी ने कहा था- बिना इच्छा के अध्ययन करना याददाश्त खराब करता है और कुछ भी ग्रहण नहीं होता है। यह कथन मार्गदर्शक है।

इस प्रकार सभी विषय की पुस्तकों की भाषा एवं सामग्री का प्रस्तुतीकरण अत्यंत महत्व रखता है क्योंकि यह एक भ्रांति है कि पठन कौशल का विकास केवल भाषा की पुस्तकों से या भाषा के अध्यापकों के द्वारा ही किया जाता है।

तृतीय चरण में कक्षा पाँचवी से आठवीं में पठन कौशल के विकास हेतु वैज्ञानिक आलेख लंबी कहानी, छोटे रोचक बाल उपन्यास रखे जा सकते हैं। छात्र सेमिनार, तीव्र गति पठन, सामग्री पर चर्चा

इत्यादि कार्यक्रम कराए जा सकते हैं। टेलीविजन से समाचार संकलन, द्विभाषी फिल्म जिसमें वह फिल्म बच्चे को ज्ञात भाषा से अलग भाषा के उपशीर्षक प्रस्तुत करती फिल्म इत्यादि कार्यक्रम किये जा सकते है। पठन कौशल के कार्यक्रमों व परीक्षण का उद्देश्य उतीर्ण या अनुतीर्ण करना नहीं वरन् बच्चों की पठन दक्षता के स्तर की पहचान व संवर्द्धन होना चाहिए। विद्यार्थी को पढ़ने की सामग्री चुनने की छूट दी जानी चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक विद्यालय में पठन कौशल विकास का कार्यक्रम रखा जाना चाहिए।

यदि बच्चों में उनके स्तर के अनुकूल पठन कौशल विकसित हो जाते है, तो उनकी विभिन्न विषयों को समझने, तथ्यों को विश्लेषण करने, सार ग्रहण करने, सारांश लिखने, संश्लेषण व विश्लेषण करने की क्षमताएँ भी उचित स्तर की होती हैं जो उनकी उपलब्धि को बढाती हैं। विभिन्न देशों में किए गए शोध अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। पाठ्यक्रम समाप्ति के स्थान पर लक्ष्य दक्षता प्राप्ति होना आवश्यक है और पठन कौशल भी सम्प्राप्ति के मूल्यांकन का भाग होना चाहिए, यह अभिलेखन भी होने चाहिए।

अतः विद्यालयी प्रक्रियाओं में पढ़ने के कौशल को समुचित स्थान दिए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए समुचित कार्यक्रम बनाये जाने की आवश्यकता है। जिसकी शुरूआत होती है पढ़ने की सामग्री रोचक बनाने एवं पाठ्यक्रम में पठन कौशल को समुचित स्थान दिए जाने से। विद्यार्थी को उनकी पढ़ने के कौशल में उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए उनको प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता होती है। पढ़ने के कौशल को एक विस्तारित प्रारूप में देखने की आवश्यकता है। यह केवल प्राथमिक स्तर (कक्षा पहली से पाँचवी) का ही विषय नहीं है, वरन् इसे प्रारंभिक शिक्षा (कक्षा पहली से आठवीं) में समग्रता के साथ पूरे चक्र में देखे जाने की आवश्यकता है और लगातार ध्यान दिए जाने की आवश्कयता है ।

विद्यालयों में पढ़ने के कौशल विकास को एक आंदोलन के रूप में लिए जाने की आवश्यकता है। साथ ही इसे सेवापूर्व व सेवारत प्रशिक्षण का अंग बनाया जाना चाहिए। इस हेतु प्रशिक्षण सामग्री को समग्रता से विकसित करने की भी आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. विद्यालयी प्रक्रियाओं में पढ़ने के कौशल को समुचित स्थान किस प्रकार से दिया जा सकता है?
2. पठन कौशल की अभिवृद्धि के लिए कौन से तीन चरण होते हैं ? व्याख्या करें।

3.6 अर्थ प्रकाशक विषयवस्तु (Expository Text) Vs विवरणात्मक विषयवस्तु (Narrative Text)

शिक्षण का उद्देश्य बालको को विषय के प्रति ज्ञान प्राप्त हो जाना नहीं है बल्कि इसका मुख्य उद्देश्य बालको में पढ़ने के प्रति रूचि जाग्रत करना है । इस हेतु बालकों को पाठ्य पुस्तक के अलावा अन्य

पुस्तकें या मैगजीन आदि के अध्ययन करने के लिए प्रेरित करे जिससे उनमे पठन करने रूचि बढ़े। पठन अवबोध के निम्न प्रकार है –

1. **अर्थ प्रकाशक विषयवस्तु (Expository Text):** अर्थप्रकाशक विषयवस्तु का अर्थ है विषयवस्तु से सम्बंधित तथ्यों को सरल व स्पष्ट रूप में प्रस्तुत या उजागर करना है अर्थात विषयवस्तु की वास्तविकता एवं सत्यता से अवगत करता है। इस प्रकार की विषय वस्तु लेखन का उद्देश्य पाठक को सूचना प्रदान करना होता है। इस टेक्सट के द्वारा प्रदान सूचनाएँ व तथ्य उद्देश्यपूर्ण व विश्वनीय श्रोतों से प्राप्त होते है। यह सत्य व सहज रूप से शिक्षण केन्द्रित विषय वस्तु को पाठक तक पहुँचाने का कार्य करता है। इन टेक्सट का लेखन स्पष्ट, आत्मकेंद्रित व संगठित होता है। इसके माध्यम से केंद्र बिंदु पर जल्दी व प्रभावी ढंग से पंहुचा जा सकता है। क्योंकि ये टेक्सट सूचना आधारित होती है तथा इन सूचनाओं को निम्न के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । उदाहरणत : पाठ्यपुस्तक, समाचार अभिलेख, अनुदेशन, मानक पात्र, भाषायी पुस्तकें, स्व-सहायक पुस्तकें, देश आदि।

   अर्थप्रकाशक विषयवस्तु को क्यों सीखे ?

   सोच या विचार को विकसित करने में अर्थप्रकाशक विषयवस्तु हमारी मदद करता है । अर्थप्रकाशक विषयवस्तु लेखकों के द्वारा संरचनात्मक तत्वों का उपयोग कर विषय वस्तु को अपने विचारों के साथ जोड़ते हुए व्यवस्थित करते है। जो बालक विषय वस्तु की संरचनात्मक तत्वों के विचारों को समझ लेता है वो आसानी से इस प्रकार की विषय वस्तु का विश्लेषण करना सीख जाता है । विषय वस्तु की विशेषताएँ पढ़ाने वाले को सूचनाओं को संगठित करने व पहचान बताने का कार्य करती है। जैसे कोई हैडिंग (मुख्य बिंदु या प्रकरण) से बालकों को उनकी सहायता से अवगत करना। किसी विषय वस्तु की हैडिंग से परिचित होने पर विद्यार्थी उससे सम्बंधित कुछ विशिष्ट सूचनाएँ मिल जाती है जिनके आधार पर पूर्व में प्राप्त ज्ञान से बालक उससे जोड़ लेता है और विषयवस्तु को लम्बे समय तक अपनी स्मृति में संग्रहित कर लेता है। अर्थात बिना हैडिंग के किसी भी प्रकार सुचना का विस्तार करना अँधेरे में तीर चले के समान है।

2. **विवरणात्मक विषयवस्तु (Narrative Text) -** जब हम काल्पनिक उपन्यास, नाटक, कहानी या घटना की बात करते है, तो वास्तव में हम विवरणात्मक विषय वस्तु के सम्बन्ध में बात कर रहे होते है। विवरणात्मक विषय वस्तु का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना तथा पाठक का ध्यान आकर्षित करना है। इनका लेखन सूचना देने, शिक्षा देकर अभिवृति को बदलने या सामाजिक विचारों या मतों के प्रति अभिवृति प्रस्तुत करने से है। इसके अंतर्गत चारित्रिक विशेषताएँ समय व जगह के अनुसार बदलते रहते है तथा कहनियों में एक या एक से अधिक घटना/ समस्याएँ इस तरह क्रमबद्ध होती है कि उनका समाधान एक के बाद एक कड़ी से सुलझता चला जाता है।

विवरणात्मक विषय वस्तु के प्रकार

विवरणात्मक विषय वस्तु कई प्रकार की होती है जिनमे काल्पनिक व तथ्यात्मक दोनों का सहयोग होता है। निम्न लेख संक्षिप्तीकरण के अंतर्गत है- परियों की कहनी, रोमांचक कहानियाँ, डरावनी कहानियाँ, झूठ आधारित काल्पनिक कहानियाँ, ऐतिहासिक संक्षिप्तीकरण, लोक कथाएँ, अनुभव आधारित घटनाएँ, व्यक्तिगत अनुभव आधारित कथाएँ, जासूसी या रहस्यमयी पहेलियाँ।

विवरणात्मक विषयवस्तु की विशेषताएँ

i. बोले जाने वाले संवादों का काल परिवर्तनशील होता है। जैसे – वर्तमान काल से भविष्य काल तक।
ii. पात्रों की विशेषताओं को उनके व्यक्तित्व एवं अभिनय के रूप में परिभाषित किया जाता है। जैसे राम या रावण का अभिनय करने वाला पात्र का प्रस्तुतीकरण इनके गुणों के अनुसार ही होगा।
iii. वर्णात्मक भाषा का प्रयोग किया जाता है जिससे पाठक के दिमाग में सर्जनात्मक / काल्पनिक चित्र की छवि बने और वह कहनी या संक्षिप्तीकरण के बे में पूर्वानुमान लगा सके जिससे उसका कहनी पढ़ने या देकने में रूचि बनी रहे।

विवरणात्मक विषयवस्तु की संरचना

परम्परागत विवरणात्मक की विषय वस्तु की संरचन के लिए निम्न क्रियाओं को केंद्र में रखना होता है-

i. अभिनवन (orientation)
ii. समस्या या जटिलता (problem or complication)
iii. समाधान (resolution)

विवरणात्मक लेखन निम्न पदों में पूर्ण होता है –

i. Plot– कहानी में क्या होने वाला है?
ii. Setting – कहानी कब, कहाँ और कैसे शुरू होगी।
iii. चारित्रिकरण (Characterisation) – कौन मुख्य पात्र होगा और वह कैसा लगेगा।
iv. संरचना (Structure)–कहानी की संरचना कैसी होगी, कहानी कहाँ से शुरू होगी, समस्या क्या होगी व समाधान क्या होगा।
v. थीम (Theme)– कहानी की मुख्य थीम या केंद्र क्या होगा, इस कहानी के माध्यम से लेखक क्या सन्देश या सीख देना चाहता है।

अत: विवरणात्मक विषय वस्तु वह काल्पनिक उपन्यास या कहनियाँ होती है जो भावनाओं व संवेगो से परिपूर्ण होती है जो मनोरंजन कराने के उद्देश्य से लिखे जाते है। वही दूसरी तरफ एक्स्पोसिट्री टेक्सट वह

है जो तथ्यों को शौक्षणिक व उद्देश्पूर्ण तरीके से प्रस्तुत करते है। यह टेक्सट सुचना प्रदान करने का कार्य करते है।

अभ्यास प्रश्न

1. अर्थप्रकाशक विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?
2. विवरणात्मक विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?

3.7 हस्तांतरण विषय वस्तु (Transactional Text)Vs चिंतनपरक विषय वस्तु (Reflexive Text)

1. **हस्तांतरण विषय वस्तु (Transactional Text)**–हस्तांतरण विषय वस्तु वह है जिसमें प्रश्न पूछना और उन प्रश्नों का जवाब देना समाहित हो अर्थात किसी क्रिया के प्रति प्रतिक्रिया उत्पन्न करना या आचार विचार व भावों का सम्प्रेषण के माध्यम से विनिमय करना ही 'हस्तांतरण विषयवस्तु' कहलाता है। जैसे एक मित्र के आये हुए पत्र के जवाब में दूसरा मित्र उसे प्रशंसनीय पत्र लिखता है। शब्दों के आधार पर हस्तांतरण विषय वस्तु को दो भागों में विभाजित किया जाता है –

   a. **वृहद हस्तांतरण विषयवस्तु (Long Transactional Text)-**वह टेक्सट जो 80 या उससे अधिक व 200 से 250 से कम शब्दों के होते है उन्हें लॉन्ग हस्तांतरण विषयवस्तु कहते है। लॉन्ग हस्तांतरण विषयवस्तु के अंतर्गत निम्न टेक्सट आते है-

      - ऑफिसियल या फॉर्मल लेटर (Official or Formal Letter)
      - फ्रेंडली लेटर (Friendly Letter)
      - आन्तरिक ज्ञापन (Internal Memorandum)
      - एजेंडा एंड मिनट्स ऑफ़ मीटिंग (Agenda and minutes of the meeting)
      - संक्षिप्त लेख लिखना (Writing a short article)
      - डायलोग (Dialogue)
      - साक्षात्कार (Interview)
      - रिव्यु (Review)
      - समाचार पत्र अभिलेख (Newspaper Article)

- मैगज़ीन अभिलेख (Magzine Article)
- न्यूज़ पेपर कॉलम (Newspaper Column)
- व्यक्तिगत वृत (Curriculum Vitae or CV)
- शोक सन्देश (Obituary)
- ब्राउशर (Broucher)
- एडिटोरियल (Editorial)

b. **संक्षिप्त हस्तांतरण विषयवस्तु (Shorter Transactional Text)-** वह टेक्सट जो 80-100 शब्दों से कम में लिखे जाते है संक्षिप्त हस्तांतरण विषयवस्तु कहलाते है । संक्षिप्त हस्तांतरण विषयवस्तु के अंतगर्त निम्न टेक्सट आते है-

- आमंत्रण पत्र (Invitation)
- डायरी (Dairy)
- पोस्टकार्ड (Postcard)
- निर्देश पुस्तिका (Direction)
- अनुदेशन (Instruction)
- विज्ञापन (Advertisment)
- विज्ञापन पुस्तिका (Flyer)
- पोस्टर (Poster)
- प्रपत्र भरना (Filling in a Form)
- ई-मेल लिखना (Writing Email)
- फैक्स भेजना (Sending Fax)

c. चिंतनपरक विषय वस्तु (Reflexive Text)- लेखक अपने लेखन कार्य के माध्यम से अपने स्वयं के विचारों, संवेगात्मक क्रियाओं एवं भावों को इस रचनात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है कि पाठक भी उन्हें पढ़कर स्वयं को उन्हीं भावो में डूबा हुआ महसूस करता है जिसका उसके जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। लेखक के गहन विचार एवं संवेगात्मक भाव ही सम्पूर्ण संसार के पाठकों के विचारों एवं भावों को प्रभावित करते है। जैसे की लेखक के स्वयं के सपने व आकांक्षाओं पर लेख लिखता है। उदाहरण - 'अपने जीवन काल के पंसदीदा टीचर के बारे

में बताना'। 'जीवन के बारे में स्वयं के विचार तथा जीवन कैसे जिया जाए '। जैसे विषयों पर अपने विचारों में लेख लिखना।

चिंतनपरक विषय वस्तु को लिखने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए –

i. विषय वस्तु सैद्वान्तिक होती है।
ii. भाव व संवेग मुख्य भूमिका निभाते है।
iii. लेखन का कुछ भाग कुछ अधिक विस्तृत हो सकता है जिसके अंतगर्त लेखक उन बातों को विस्तार से बताता है जिसके द्वारा पाठक विविध व उद्देश्पूर्ण घटनाओं के माध्यम से भावनाओं को पुन: प्रकट करता है।
iv. उन विचारो व भावनाओं को प्रदर्शित करना जो अति संवेदनशील व व्यक्तिगत भागीदारी के रूप में लेखक के द्वारा महसूस किये जा चुके हो।

अत: हस्तांतरण विषय वस्तु वह है जिसमें विचार व भावों को सम्प्रेषण के माध्यम से विनिमय या किसी क्रिया के प्रति प्रतिक्रिया के रूप में दिया जाता है वही दूसरी तरफ चिंतनपरक विषय वस्तु है जिसमें लेखक स्वम् के विचार, सपनों व आकांक्षाओं को कथा या कहानी के रूप में प्रस्तुत करता है।

अभ्यास प्रश्न

3. हस्तांतरण विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?
4. चिंतनपरक विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?

3.8 स्कीमा क्या है? (What is Schema?)

स्कीमा - स्कीमा (Schema) से तात्पर्य ऐसी मानसिक संरचना से है जो व्यक्ति विशेष के मस्तिक में सूचनाओं को संगठित तथा व्याख्यायित करने हेतु विद्यमान होती है। यह स्कीमा दो प्रकार का होता है। पहला

1. साधारण स्कीमा (General Schema)

2 . जटिल स्कीमा (Complex Schema)

सधारण स्कीमा से तात्पर्य ' स्कीमा मोटरकार खिलौने के स्कीमा से तात्पर्य समझा जा सकता है। इसी प्रकार अंतरिक्ष का निर्माण कैसे हुआ का स्कीमा जटिल स्कीमा का उदाहरण है।

स्कीमा सिद्धान्त इस बात को प्रतिपादित करता है कि पाठ्य अंश से सीखने एवं समझने के लिए हमें इसे अपने पूर्वज्ञान से जोड़ना ही पड़ेगा। (रूमेल हार्ट, 1980), वास्तव में स्कीमा शब्द का पहली बार प्रयोग बारलेट द्वारा सन् 1932 में किया गया जिसमें उसने स्कीमा की पूर्व प्रतिक्रियाओं एवं अनुभवों का सक्रिय संगठन कह कर प्रतिपादित किया।

भाषा के संदर्भ में स्कीमा सिद्धान्तों को स्पष्ट करते हुए जो सबसे महत्वपूर्ण बात कही जाती है वह यह है कि लिखा हुआ कोई भी वाक्य या वाक्यों के समूह अपने आप मे कोई विशेष अर्थ नहीं रखता है। बल्कि वह तो केवल एक दिशा की तरफ इंगित करता है जिससे कि पाठक स्वयं उसके अर्थ का निर्माण कर सके। पाठक अपने पूर्वज्ञान के आधार पर उस वाक्यांश का अर्थ ग्रहण करता है। यह प्रारंभिक पाठक का पूर्व ज्ञान एवं ज्ञान संरचना स्कीमेटा के मान से जाना जाता है। किसी भी पाठक का स्कीमेटा एक ऊपर से नीचे के क्रम में व्यवस्थित रहता है। जिसमें कि साधारण ज्ञान ऊपर के क्रम तथा विशेष ज्ञान नीचे के क्रम में व्यवस्थित रहता है। स्कीमा सिद्धान्त के अनुसार किसी भी वाक्यांश को समझने हेतु पाठक का पूर्व ज्ञान एवं वाक्यांश के बीच समन्वय स्थापित करना आवश्यक होता है। ठीक तरीके से समझने हेतु पूर्वज्ञान एवं वर्तमान पठन के बीच समन्वय स्थापित होना ही चाहिए -

स्कीमेटा के प्रकार (Types of Schemata)

i. औपचारिक स्कीमेटा (Formal Schemata)
ii. विषयवस्तु संबंधी स्कीमेटा (Content Schemata)
iii. सांस्कृतिक स्कीमेटा (Cultural Schemata)
iv. भाषाई स्कीमेटा (Linguistic Schemata)

1. **औपचारिक स्कीमेटा (Formal Schemata) -** औपचारिक स्कीमेटा से तात्पर्य विभिन्न प्रकार के आलाकारिक संरचनात्मक वाक्यांशों के संदर्भ का पूर्व ज्ञान से है। यदि दूसरे शब्दों में कहा जाय तो औपचारिक का स्कीमों से तात्पर्य विभिन्न प्रकार के संप्रत्ययों के प्रस्तुतीकरण से है। विभिन्न प्रकार के पाठ जैसे कहानियां, पत्र, भाषण, कविताएं, गद्यांश आदि की पहचान एक दूसरे से भिन्नता के आधार पर ही होता ह। इनके आधार में निहित संरचना है उसे औपचारिक स्कीमेटा कहा जाता है। उदाहरण के लिए बहुत सी कहानियों के आधार में जो स्कीमेटा होता है। वह निम्न प्रकार का होता है।

कहानी = व्यवस्था (स्थिति + स्थिति) + प्रकरण + घटनाक्रम + प्रतिक्रिया

Story = Setting State + state + episode + event + reaction

कहानियाँ इस तरह की पृष्ठभूमि में होती हैं जिससे कि समय, स्थान एवं चरित्र की पहचान हो सके तथा साथ ही साथ विभिन्न प्रकरण विभिन्न प्रतिक्रियाओं को जन्म देता है। विभिन्न प्रकार की विधाएं में विभिन्न प्रकार संरचनाएं होती है।

2. **विषयवस्तु संबंधी स्कीमेटा (Content Schemata) -** विषयवस्तु संबंधी स्कीमेटा से मूलत: वाक्यांश (पाठ) के विषय वस्तु संबंधी पृष्ठभूमि ज्ञान से संबंधित है। (कैरेली एण्ड एस्टर होल्ड, 1983), इसका जुड़ाव किसी शीर्षक विशेष के संप्रत्ययात्मक ज्ञान एवं सूचना है जो कि एक व्यवस्थित तरीके से जुड़ा हुआ होता है। विषय वस्तु संबंधी स्कीमेटा विशेष घटनाओं एवं वस्तुओं का एक खुला सेट होता है। उदाहरण के लिए यदि हम किसी रेस्तराँ में उपलब्ध सर्विस, मीनू, विभिन्न प्रकार के भोजन का ऑर्डर देना, बिल अदा करना, टिप देना आदि की सूचना से होगा। विषय-वस्तु संबंधी स्कीमेटा ज्यादातर संस्कृति बाध्य (Cultural- bound) होता है। इसलिए सांस्कृतिक स्कीमा को सामान्यतया विषय वस्तु स्कीमा में वगीकृत किया जाता है।
3. **सांस्कृतिक स्कीमेटा (Cultural Schemata)** -- जॉनसन (1981) एवं कैरेली (1981) के अध्ययनो ने इस बात को पुष्ट किया है कि किसी पाठ (वाक्यांश) में निहित सांस्कृतिक ज्ञान पाठक के स्वयं के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से द्वन्द्व करता है। स्वयं के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से संबंधित पाठ या वाक्यांशों को दूसरे सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से पाठ या वाक्यांश के मुकाबले समझना सहज एवं आसान होता है। विभिन्न सांस्कृतिक समूह उसी पाछ या वाक्यांश को अलग अलग समझते है और उसकी व्याख्या करते हैं। किसी पाठ के पूर्ण रूप से समझने के लिए उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (Cultural Background) की समझ अति-आवश्यक है।
4. **भाषाई स्कीमेटा (Linguistic Schemata)** - भाषाई स्कीमा का संबंध व्याकरण एवं शब्दों के ज्ञान से है। यह किसी भी पाठ को समझने में अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस्की (1988) के अनुसार अच्छे पाठक किसी पाठ-विशेष को अच्छी तरह व्याख्यायित करने के साथ साथ उसे अच्छी तरह से डिकोड (Decode) भी करते हैं। बिना अच्छी डिकोर्डिंग दक्षता (Decoding skill) के कोई भी अच्छा पाठक बन ही नहीं सकता है।

स्कीमेटा की प्रकृति (The Nature of Schemata): स्कीमा सिद्धांत की मूल धारणा यह है कि मानव स्मृति मूलतः शब्दार्थ की तरह व्यवस्थित है न कि वर्णमाला क्रमों के अनुसार और न ही ध्वन्यात्मकता के अनुसार। इसके अलावा स्मृति एक थेसारस की तरह व्यवस्थित है न कि एक शब्दकोष की तरह । कोइ भी व्यक्ति विशेष प्रत्येक तरह की वस्तु की तरह स्कीमेटा रखता है चाहें वो वस्तु दिखने में साधारण हो या क्लिष्ट हो। जैसे व्यक्ति कलम, फूटबाल या चश्मा का स्कीमेटा रखता है वैसा ही वह प्यार (Love), क्रोध (Anger) या फिर जलन जैसे सम्प्रत्ययों का स्कीमेटा भी रखता है। वह भिन्न - भिन्न क्रियाओं का भी स्कीमेटा रखता है जैसे किसी वस्तु को खरीदना , फुटबाल खेलना या फिर सेमीनार में उपस्थित होना इत्यादि। एक कुर्सी की स्कीमा उसी तरह की हो सकती है जैसा कि चित्र संख्या – १ में दिखाया गया है।

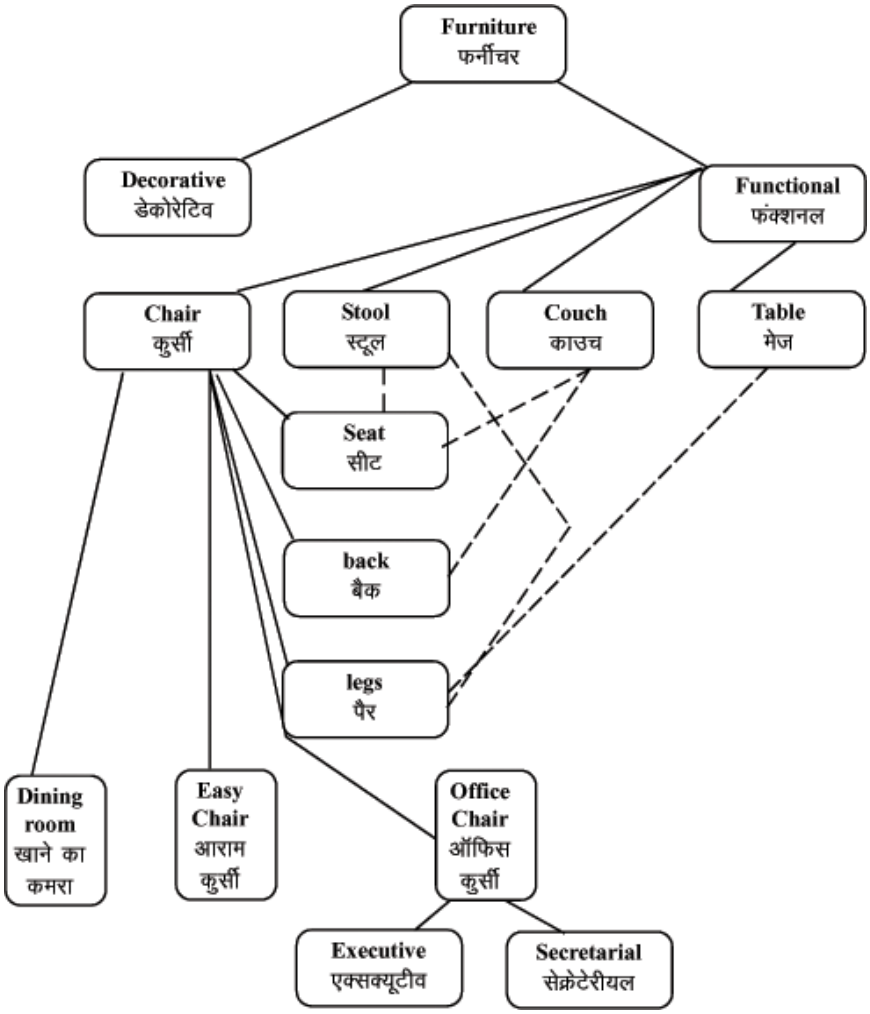

A Partial Semantic Network of "CHAIR"

यह कई अलग स्कीमेटा का एक समूह भी हो सकता है। किसी भी वस्तु को कुर्सी कहे जाने के लिए कोई निश्चित गुण या विशेषताएं होता है। जैसे की एक कुर्सी में एक सीट, दो हैंडल एवं, बैक, काउच, होना अनिवार्य है तभी उसको कुर्सी कह सकते हैं। इसी तरह से घर की कुर्सी, आफिस की कुर्सी, दैनिग कमरे की कुर्सियों के अलग- अलग गुण होंगे।

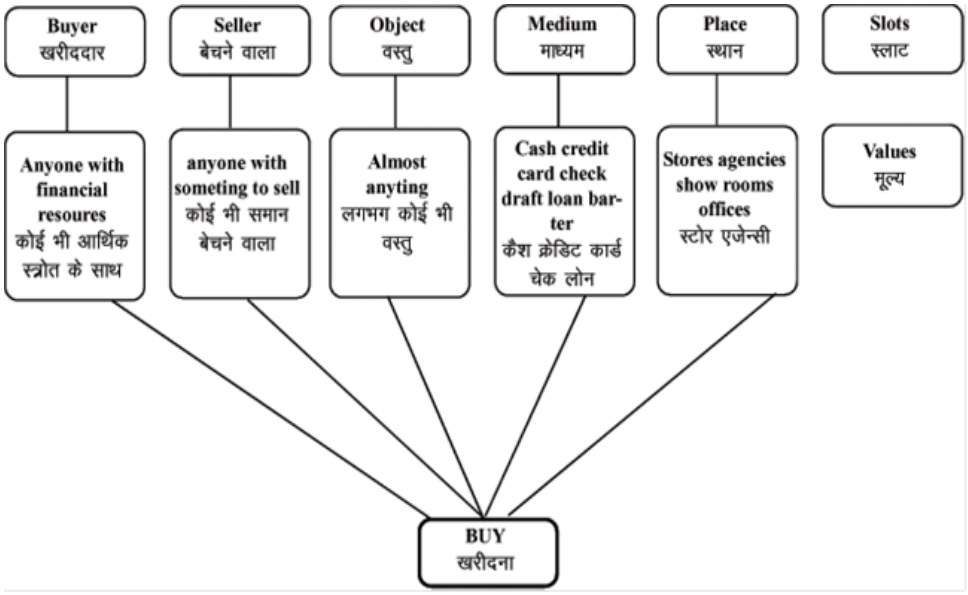

Fig. A partial representation of what might exist in a person's 'buy' schema.

अमूर्त सत्ताओं (Abstract Entities) जैसे – प्रेम (Love), क्रोध (Anger), जलन (Envy) इत्यादि जैसे के लिए स्कीमेटा एक संप्रत्यय (Concept) की ही तरह होता है। किन्तु विभिन्न क्रियाओं एवं घटनाओं के लिए स्कीमेटा संप्रत्ययों की तरह न होकर विमाओं की तरह होती है। चित्र संख्या २ प्रासंगिक एवं क्रमबद्ध विमाओं की भांति किसी वस्तु को खरीदने की स्कीमेटा का उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न

5. स्कीमा क्या होता है ? स्पष्ट करें।
6. साधारण स्कीमा एवं जटिल स्कीमा में अंतर स्पष्ट करें ।
7. स्कीमेटा के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें ।
8. स्कीमेटा की प्रकृति से आपका क्या तात्पर्य है ?
9. किसी व्यक्ति के किसी वस्तु के खरीदने का स्कीमा का निर्माण या प्रारूप कैसा हो सकता है ? निरूपण करें।

3.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में पठन अवबोध को समझाते हुए यह बताया गया है कि पठन कौशल अन्य तीनों कौशलों से अधिक महत्वपूर्ण है। पठन का अर्थ जोर से पढ़ना या मौन वाचन करना है जिससे लिखित या मुद्रित

सामग्री का अर्थ भाव समझ में आ जाए । बिना अर्थ भाव समझे पढ़ना केवल शब्दों पर निगाह घुमाना है।

3.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. सिंह, निरंजन कुमार (2008),"माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर।
2. डॉ. मंगल, उमा (2006),"हिंदी शिक्षण" आर्यबुक डिपो, करोल बाग, नई दिल्ली।
3. डॉ. शर्मा, खेमराज & ब्रजराज (2012),"हिंदी शिक्षण" अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. डॉ. पाण्डेय, नित्यानंद & डॉ. गंगाराम शर्मा (2005),"हिंदी भाषा शिक्षण"एच.पी.भार्गव बुक हाउस, आगरा।
5. भाई योगेन्द्र जीत (2006),"हिंदी भाषा शिक्षण"विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
6. डॉ. चतुर्वेदी शिखा,"भाषा एवं हिंदी साहित्य शिक्षण"आर लाल बुक डिपो, आगरा।
7. डॉ. डबास रामकरण, पारिक शिवराज,"हिंदी भाषा शिक्षण एवं प्रवीणता"(SIERT उदयपुर), राजस्थान राज्य पाठ्यपुस्तक मंडल, जयपुर।
8. NCF पाठ्यचर्या (2005), "NCERT नई दिल्ली"
9. डॉ. पाठक पी. डी. (2009), "शिक्षा मनोविज्ञान"आर लाल बुक डिपो, आगरा।
10. डॉ. गाँधी, भारत कुमार, बी एल नापित (2014),"भाषा, संज्ञान और समाज पाठ्यचर्या के संदर्भ में" (SIERT उदयपुर), राजस्थान राज्य पाठ्य पुस्तक मंडल, जयपुर।
11. अग्निहोत्री, रमाकांत (2011),"बहुभाषिकता , साक्षरता, भाषा शिक्षण एवं बौद्धिक विकास छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक निगम, रायपुर।
12. भारतीय भाषाओं शिक्षण (2009),"आधार पत्र NCERTनई दिल्ली"
13. सिंह सूरजभान (2008),"हिंदी भाषा संदर्भ और संरचना,साहित्य सहकार,नई दिल्ली।
14. वाजपेयी किशोरीदास, "शब्दकोश अनुशासन, वाणीप्रकाशक,नई दिल्ली
15. प्रसाद वासुदेवनंदन (2013),"आधुनिक हिंदी व्याकरण एवं रचना", भारती भवन प्रकाशक, पटना।
16. डॉ. त्यागी ओंकारसिंह& एम्. पी. सिंह, "शैक्षिक प्रोद्योगिकी एवं कक्षा-कक्ष प्रबंध"अरिहंत शिक्षा प्रकाशन, जयपुर।

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. किसी व्यक्ति के किसी वस्तु के खरीदने का स्कीमा का निर्माण या प्रारूप कैसा हो सकता है ? निरूपण करें।
2. अर्थप्रकाशक विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?
3. विवरणात्मक विषयवस्तु से आप क्या समझते हैं ?
4. हस्तांतरण विषय वस्तु के प्रकारों को उदाहरण सहित बताइए ?
5. चिंतनपरक विषय वस्तु को लिखने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

इकाई 4 - विशेष सन्दर्भों में लेखन : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में लिखने की प्रक्रिया,पढ़ने एवं लिखने के बीच सम्बन्ध स्थापित करना , बच्चों के संप्रत्यय को समझने के लिए उनके लेखन का विश्लेषण करना : सीखने एवं समझने के लिए तरीके एवं माध्यम के रूप में उद्देश्यपरक लेखन

Writing in the specific content areas: Social Sciences, Science, Mathematics, and Literature of Relevant Languages, Making Reading-Writing Connections, Process of Writing, Process of Analyzing Children's Writing to Understand their Conceptions: Ways and Means of Writing with a Sense of Purpose Writing to Learn and Understand

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 लेखन कौशल का अभिप्राय
4.4 लिखने की प्रक्रिया
4.5 लिखने एवं पढ़ने के मध्य सम्बन्ध
4.6 विशेष सन्दर्भों में लेखन : सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में लिखने की प्रक्रिया
4.7 बच्चों के संप्रत्यय को समझने के लिए उनके लेखन का विश्लेषण करना : सीखने एवं समझने के लिए तरीके एवं माध्यम के रूप में उद्देश्यपरक लेखन
4.8 सारांश
4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विद्यार्थी ने जो कुछ पढ़ा, या उसे जो भी ज्ञान दिया गया, उस ज्ञान का भली- भांति आत्मीकरण करने के लिए, उसका कुशलतापूर्वक उपयोग करने की क्षमता का विकास करने, उसकी जांच करने अथवा प्राप्त ज्ञान के विषय में उसकी अभिव्यक्ति का विकास करने, उसके विकास का मूल्यांकन करने, उसमें मौलिकता की शक्ति का विकास करने अथवा मौलिकता की योग्यता की गति व दिशा का ज्ञान व मूल्यांकन करने हेतु जो कार्य विद्यार्थी को दिया जाता है उसे ही लिखित कार्य कहा जाता है।हमारे देश में आकादमिक उपलब्धि (Academic Achievement) की सफलता मूलतः लिखने की योग्यता पर ही निर्भर है चूँकि जो बेहतर तरीके से लिख सकता है वही अपने आप को ठीक ढंग से परीक्षा में प्रस्तुत कर सकता है। लिखना एक तरीके से बात करने के सामान है। जैसे ही हम लिखते हैं हम किसी से बात करते हैं हांलाकि अधिकतर जिससे से हम बात कर रहे होते है वह हमारे सामने उपस्थित नहीं होता है। हम वर्तमान की परिस्थितियों या घटनाओं की याद ताज़ा रखने के लिए भी लिखते हैं। एक अध्यापक को लिखने की शिक्षा ठीक उसी प्रकार देनी चाहिए जैसे की वह बात करने की शिक्षा पा रहा हो। चूँकि जब तक बच्चा स्कूल आता है तब तक वह नए नए वाक्य बनाना सीख चुका होता है हालांकि अभी वह उन वाक्यों का क्रमबद्ध प्रयोग करने में माहिर नहीं होता है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई क अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. लेखन कौशल का अभिप्राय स्पष्ट कर सकेंगे।
2. लिपि की शिक्षा की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
3. लिखने एवं पढ़ने के मध्य जो अंतर्संबंध है उसे समझ सकेंगे।
4. लिखने की प्रक्रिया का अर्थ बता सकेंगे एवं परिभाषित कर सकेंगे।

4.3 लेखन कौशल का अभिप्राय (Meaning of Writing Skill)

भाषा एक कौशल है। इस कौशल पर पूर्ण अधिकार पाने के लिए विद्यार्थियों में सुनने, बोलने, पढ़ने एवं लिखने के कौशल का विकास करना ज़रूरी है क्योंकि भाषा का इस्तेमाल दो तरीकों से ही होता है – मौखिक एवं लिखित। मौखिक रूप पर अधिकार करने के लिए सुनना और बोलना तथा लिखित रूप पर अधिकार करने के लिए पढ़ना और लिखना। इन चारों कौशलों को विकसित करना ही मुख्य उद्देश्य है। व्यक्ति जिन ध्वनियों का प्रयोग विचारों की अभिव्यक्ति के लिए करता है उसे मौखिक भाषा कहते हैं। इन्हीं ध्वनियों को जिन विशिष्ट चिन्हों के माध्यम से ल्किहित रूप में व्यक्त किया जाता हैं, उन्हें लिपि कहते हैं। प्रत्येक भाषा की अपनी एक लिपि होती है। देवनागरी हिन्दी भाषा की लिपि है एवं रोमन अंग्रेज़ी भाषा की लिपि है। सामान्य रूप से लिखकरविचारों की अभिव्यक्त करना लेखन कौशल या

लिखित अभिव्यक्ति कहा जाता है। लिपि का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात भाषा के लिखित रूप में प्रयोग कर व्यक्ति अपने भावों एवं विचारों को लेखन कौशल के द्वारा स्थायित्व प्रदान करता है।

लिपि की शिक्षा की आवश्यकता (Requirement of Script Writing): बच्चों में लेखन कौशल का विकास करने के लिए लिपि की शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। जिस तरह ध्वनियों के पूर्ण ज्ञान के बिना उच्चारण शुद्ध नहीं हो सकता एवं मुखिक अभिव्यक्ति में पूर्णता नहीं आ सकती, उसी प्रकार लिपि के ज्ञान के बिना विद्यार्थी न तो शुद्ध वर्तनी का प्रयोग कर सकता है और न ही विचारों को लिखित रूप में अभिव्यक्त कर सकता है। जब तक विद्यार्थी को लिखना पढ़ना नहीं आता तब तक भाषा पर उसका पूर्ण अधिकार नहीं हो सकता। अतः भाषा पर पूर्ण अधिकार कराने एवं अभिव्यक्ति कौशल को पूरी तरह से विकसित करने के लिए बच्चे को लिपि का पूर्ण ज्ञान देना अति आवश्यक है। लेखन कौशल या लिखित अभिव्यक्ति के महत्व को हम निम्न रूप से स्पष्ट कर सकते हैं।

1. लिखित भाषा विद्यार्थी के हाथ और मस्तिस्क में संतुलन बना कर रखती है।
2. लिखित भाषा ही साहित्य के भण्डार में वृद्धि करती है। यदि लिपि न होती तो आज साहित्य कान्हां से आता ? यदि लेखन कौशल न होता तो नई- नई रचनाएं कान्हां से आती ?
3. आधुनिक शिक्षा प्रणाली की प्रमुख विशेषता परीक्षा है। इसके बिना शिक्षा प्रणाली की कल्पना भी नहीं की जा सकती। लेखन- कौशल के द्वारा ही विद्यार्थी की योग्यता का मूल्यांकन किया जाता है।
4. देश- विदेश में हो रहे ज्ञान- विज्ञान आदि से परिचित कराने का मुख्य साधन लिखित भाषा ही है।
5. व्यावसायिक एवं औद्योगिक प्रगति का आधार भी लिखित भाषा ही है। मौखिक रूप से कार्य-व्यवसाय में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। हर व्यवसाय में तरह –तरह के रिकार्ड आदि लिखकर रखने पड़ते हैं।
6. आज तो लेखन एक स्वतंत्र व्यवसाय के रूप में भी मानव जाति का कल्याण कर रहा है अनेक व्यक्ति अपनी लेखनी की कला से ही अपनी रोजी –रोटी की व्यवस्था कर रहे हैं ।
7. अपने विचारों को सुरक्षित रखने के लिए लिखित अभिव्यक्ति की आवश्यकता है। लिखाकर हम अपने विचारों को वर्षों के लिए स्थायित्व प्रदान कर सकते हैं।
8. जीवन के अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जन्हाँ केवल मौखिक अभिव्यक्ति से काम नहीं चल सकता है। दूर रहने वाले मित्र या संबंधी को अपना सन्देश देने, एक दूसरे के साथ कोई कार्य करने या अन्य कोई समाचार पहुंचाने के लिए लिखित भाषा की आवश्यकता होती है।
9. दैनिक जीवन का विवरण रखने, घर पर दनिक हिसाब किताब रखने आदि व्यावहारिक कार्यों लिखित भाषा का प्रयोग करना पड़ता है।
10. शिक्षा ग्रहण करते समय पठित सामग्री को संगठित करने प्रश्नों का उत्तर तैयार करने, पाठ का सार तैयार करने, गृहकार्य करने आदि में लिखाण – कौशल इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है।

11. हमारे पूर्वजों की सभ्यता और संस्कृति को लिखित भाषा ने ही हम तक पहुंचाया है। इसी प्रकार हमारी संस्कृति आगे आने वाली पीढ़ी तक भी लिखित भाषा के ही माध्यम से ही हस्तांतरित होती रहेगी।

अभ्यास प्रश्न

1. लेखन कौशल से आप क्या समझते हैं ?
2. लिपि की शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
3. लेखन कौशल या लिखित अभिव्यक्ति के महत्व को स्पष्ट करें ।

4.4 लिखने की प्रक्रिया (Process of Writing)

भाषा सीखने का एक स्वाभाविक क्रम है – सुनना, बोलना और लिखना। भाषा की शिक्षा देने के लिए प्राथमिक स्तर से ही बच्चों में इन चारों कौशलों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है।

पहली अवस्था (First Stage)

बच्चों को पहले मौखिक भाषा के शिक्षा दी जाती है, उसके पश्चात पढ़ना सीखाया जाता है और उसके तुरंत पश्चात लेखन- कौशल का शिक्षण आरम्भ किया जाता है। जैसे ही बच्चे अक्षरों का उच्चारण कर उनके लिपिबध्ह रूप को पहचानने लगते हैं, वैसे ही इन अक्षरों के लिपिबद्ध रूपों को लिखना सीखना भी शुरू कर दिया जाता है। यह कार्य तभी शुरू किया जाना चाहिए जब बच्चों की उंगलियां कलम पकड़ने की अभ्यस्त हो जाएं।

लेखन कौशल को विकसित करने के लिए सर्वप्रथम बच्चों को मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए, क्योंकि लिखना शुरू करने से पहले से यह जानना आवश्यक होता है कि बच्चा लिखने के लए तैयार है या नहीं। यह बात सर्वविदित है कि लिखना सीखना मौखिक या वाचन- कौशल से कठिन होता है। बच्चे को लिखना सीखाने के लए अध्यापक को निम्न प्रयास करना चाहिए।

i. पेन्सिल से कागज़ पर या चाक से श्यामपट्ट पर तरह- तरह की रेखाएं खींचने का अभ्यास कराना चाहिए।
ii. अध्यापक बालक को कोई बोर्ड पर बड़े अक्षर लिख कर उनके चारों तरफ अंगुली घुमाने का बच्चों से अभ्यास कराये ताकि उनके अंदर का डर दूर हो।
iii. तरह – तरह के बीज, दाने, मोती आदि की सहायता से भी खेल –खेल में वर्णों की आकृतियाँ बनाने का अभ्यास कराया जा सकता है।
iv. **कक्षा का आकर्षक वातावरण (The attractive environment of Classroom)**– कक्षा के कमरे में आकर्षक रंग – बिरंगे चित्र एवं चार्ट टांगने चाहिए। चार्ट में चित्र, शब्द व वर्ण बने होने चाहिए। कक्षा की दीवारों पर फर्श से २ फुट उन्हें श्यामपट बने होने चाहिए। रंग- बिरंगी चाक राखी

होनी चाहिए। इन चार्टों व चित्रों से वर्णों की आकृतियाँ बच्चे के मांस- पटल पर अंकित हो जाती हैं और चाक से वह मनचाही रेखाएं खींचता है तथा चाक पकड़ने का अभ्यास करता है।

इस प्रकार के विभिन्न साधनों व क्रियाओं के माध्यम से बच्चों की उँगलियों की मांसपेशियों को कलम पकडने तथा विभिन्न दिशाओं में घुमने का अभ्यास कराने के पश्चात ही वर्णों की रचना सिखानी चाहिए। इससे पहले बच्चों के लिखना नहीं सीखाना चाहिए।

दूसरी अवस्था (Second Stage)

वर्णों की रचना सीखना (Learning the shape of the letters) : लेखन कौशल की शिक्षा के यह दूसरी अवस्था है। जब बच्चा लिखना सीखने को तैयार हो जाए तो उसे विधिवत रूप से वर्णमाला के सभी वर्णों को लिखना सीखाना चाहिए। वर्णों को लिखना सीखाने के कई विधियां हैं। अध्यापक इनमें से कोई सी भी विधि को अपना सकता है।

i. **चित्र विधि (Pictorial Method**): वास्तव में लिपि का विकास ही चित्रों के द्वारा हुआ है। वैसे भी बछहा चित्र बनाने में ज़्यादा रुचि रखता है। अतः इस विधि में बच्चों को खेल खेल में ही लिखना सीखा दिया जाता है।

ii. **मांटेसरी विधि (Montessori Method) :** श्रीमती मांटेसरी ३ वर्ष की आयु के पश्चात बच्चे को वर्ण-रचना सीखाने का सम्प्रथन करती हैं। इस विधि में बच्चे को सर्वप्रथम लकड़ी या गत्ते के बने अक्षर दिए जाते हैं और उन पर उंगली फेरने को कहा जाता है, फिर उनके बीच पेन्सिल चलाने को कहा जाता है। जब उनकी उंगली साध जाती है तब स्वतंत्र रूप से वर्ण लिखने को कहा जाता है।

iii. **अनुसरण विधि(Imitation Method) :** इस विधि में अध्यापक बच्चे को स्लेट या तख्ती पर पेन्सिल से वर्ण लिख देता है। अब्छे उस लिखे हुए वर्ण के ऊपर स्याही के साथ कलम चलाते हैं।

iv. **रेखा विधि (Line Method):** इस विधि में बच्चे को वभिन्न प्रकार की रेखाएं खीचने का अभ्यास कराया जाता है।। जैसे- खड़ी रेखा, पडी रेखा, तिरछी रेखा, अर्द्ध वृत्त, पूर्ण वृत्त आदि। फिर रेखाओं को मिला कर वर्ण रचना सीखाई जाती है।

v. **पेस्टालाजी की रचनात्मक विधि (Constructivist approach of Pestalozzi):** इस विधि में अक्षरों को टुकड़े में विभक्त करके एक –एक टुकड़े की आकृति बनाने का अभ्यास कराया जाता है और फिर सभी टुकड़ों को मिलाकर पूरा अक्षर बनाना सीखाया जाता है। जो अक्षर सरल होते हैं उन्हें पहले बनाना सीखाया जाता है।

तीसरी अवस्था (Third Stage)

शब्दों तथा वाक्यों की रचना की शिक्षा

वर्णों की रचना सीख लेने के पश्चात बच्चे वर्ण मिलाकर शब्द बनाना और उसके पश्चात वाक्य लिखना सीखते हैं। लेखन शिक्षण की इस अवस्था में बच्चों पर ज़्यादा ध्यान देने की आवश्यकता है। इस समय बच्चे में लिखने से सम्बंधित जैसी आदतें विकसित हो जाती हैं, वे आगे भी चलती रहतीं हैं। अतः इस

अमय बच्चे को सुन्दर, सुडौल व स्पष्ट रूप से लिखने का अभ्यास कराना चाहिए। इसके लिए निम्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।

i. **सुलेख लिखने का अभ्यास कराना :** इस अवस्था में सुलेख लिखने का भ्यास कराना बच्चों के लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है।
ii. **अनुलिपि :** अनुलिपि का तात्पर्य जैसा लिखा है वैसा ही लिखना है।
iii. **प्रतिलिपि :** प्रतिलिपि किसी भी छपी हुई पुस्तक में से देख- देखकर गद्यांश या पद्यांश लिखा जाता है। इसके लिए अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रतिलिपि की सामग्री बच्चे के मानसिक स्तर एवं रुचि के अनुसार हो।
iv. **श्रुतलिपि :** प्रतिलिपि में बच्चे देखकर लिखते हैं, किन्तु श्रुत लिपि में बिना देखे, सिर्फ सुनकर लिखते हैं। इसमें अध्यापक बोलते जाता है और छात्र सुन-सुन कर लिखते जाते हैं। इससे विद्यार्थियों का सुन कर लिखने का अभ्यास होता रहता है।

चौथी अवस्था – (Forth Stage)

लेखन अभ्यास करना (Practices of Writing) : लेखन कौशल का यह चतुर्थ एवं आख़िरी चरण है।अब तक बच्चों को देखकर व सुनकर सुन्दर लेख के ज़रिए सहबद एवं वाक्य लिखने का भ्यास हो जाता है। अब बच्चों को देखकर एवं सुनकर सुन्दर लेख के ज़रिए वाक्य लिखने का अभ्यास हो जाता है। अब बच्चों को अपने भावों व विचारों को तार्किक क्रम में, व्याकरण के अनुसार भाषा का प्रयत्न करते हुए लिखने का अभ्यास करना होता है, जिससे उनमें लेखन कौशल पूरी तरह विकसित हो सके। इसके लिए कक्षा में समय- समय पर लिखित कार्य कराते रहने की कोशिश की जानी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

4. लिखने की दूसरी अवस्था – वर्णों की रचना का विस्तार से वर्णन करें ।
5. लिखने के लिए तैयार करने की अवस्था का विस्तार से वर्णन करें ?
6. लिखने की मांटेसरी विधि से आप क्या समझते हैं ?
7. चित्र -विधि की व्याख्या करें ?

4.5 लिखने और पढ़ने का संबंध (Connection between Reading and Writing)

हमें यह बात समझनी होगी कि पढ़ना लेखन को प्रभावित करता है और लिखना पढ़ने को प्रभावित करता है।विभिन्न शोधों में यह पाया गया है कि यदि कोई व्यक्ति बहुत ज़्यादा पढ़ने का कार्य करता है वह उतना ही बढ़िया लेखक भी होता है।यदि हम विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार के साहित्य यथा कहानी,

कविता,उपन्यास या निबंध पढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं तो उनकी भाषा और बेहतर निखर करके हमारे सामने आती है ।बहुत वर्षों तक विद्यार्थियों को पढना और लिखना अलग अलग सिखाया जाता था , किन्तु विगत दस वर्षों के शोध ने यह प्रमाणित एवं स्पष्ट कर दिया है कि लिखना एवं पढना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।शोध में यह बात भी निकल कर सामने आयी कि भाषिक विकास लिखने एवं पढ़ने के अंतर्संबंध परनिर्भर करता है।

हम अपने विद्यालयों में विद्यार्थियों को दो तरह से सिखाते हैं।पहला अध्यापक कुछ ज्ञान की बात उदाहरण देकर सीखाता है एवं दूसरा विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम में निर्धारित् पुस्तक को पढ़ कर सीखता है।हम सब यह बात ठीक तरह से जानते हैं कि लेखन की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य ज्ञान को लिखित रूप में स्थानांतरित करता है वहीं दूसरी तरफ हम यह आसानी से समझ सकते हैं कि जो कुछ भी लिखा जाता है वह पहले से ही हमारे दिमाग में होता है , इसलिए हम यह कह सकते हैं कि पढना , लिखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। छोटे बच्चों को यदि लिखने का ठीक से अभ्यास करवाया जाय तो उनका पढ़ने के हुनर का भी विकास होता क्योंकि लिखने बार बार अभ्यास करने से अक्षर पहचानना आसान हो जाता है और पढ़ने में भी सहायता मिलती है ।

4.6 विशेष सन्दर्भों में लेखन: सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में लिखने की प्रक्रिया (Writing in the Specific Content Areas: Social Sciences, Science, Mathematics, and Literature of Relevant Languages)

इस बात में कोई भी संदेह नहीं है कि लिखना एक हुनर हैं जिसमें हम अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।विषय कोई भी हो चाहे सामाजिक विज्ञान हो, चाहें विज्ञान हो या गणित या साहित्य या फिर भाषा हर विषय में लिखने का विशेष महत्व है । हमारी आज की शिक्षा व्यवस्था में किसी भी विद्यार्थी की सफलता लिखने पर ही निर्भर है इसलिए लिखने का महत्व और भी बढ़ जाता है ।सामन्यतया लिखने की योग्यता का विकास करने का ठेका आज कल भाषा शिक्षक के जिम्मे ही होता है , किन्तु यह ठीक नहीं है ।अलग अलग विषयों में लेखन कार्य संपादित करने की अलग अलग हुनर होता है।जिस हुनर की आवश्यकता साहित्य या सामाजिक विज्ञान के विषय में लिखने में होगी वह निश्चित रूप से विज्ञान या गणित जैसे विषयों से अनिवार्यतः भिन्न होगी।अतः लेखन कौशल विकसित करने का कार्य केवल भाषा के अध्यापक का है ऐसा नहीं है ।लिखने की योग्यता का विकास करने हेतु विभिन्न विषयों के ज्ञान के साथ साथ उन विषयों में किस तरह से लेखन कार्य संपादित होगा भी अति महत्वपूर्ण है ।

4.7 बच्चों के संप्रत्यय को समझने के लिए उनके लेखन का विश्लेषण करना : सीखने एवं समझने के लिए तरीके एवं माध्यम के रूप में उद्देश्यपरक लेखन (Process of analyzing children's writing to understand their conceptions : ways and means of writing with a sense of purpose writing to learn and understand)

जब कभी हम भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की चर्चा करते हैं तब हम विद्यार्थियों में बोलने, सुनने, पढ़ने, और लिखने के कौशल का विकास करने की बात करते हैं। इसके साथ- साथ बच्चों में अपने विचारों को प्रभावशाली ढंग से रखने एवं अभिव्यक्त करने की योग्यता का विकास करने को प्राथमिकता देते हैं। विद्यार्थी के अंदर जब तक अपने विचारों को प्रभावशाली ढंग से रखने या अभिव्यक्त करने की क्षमता विकसित नहीं होती है तब तक उसका भाषा पर पूरा अधिकार नहीं हो पाता। इसलिए रचना शिक्षण जिसे उद्देश्य परक रचना शिक्षण (Purpose Writing) भी कहते हैं, की आवश्यकता पड़ती है। सामान्यतया मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति दो तरह से करता है- बोलकर (मौखिक रूप में) एवं दूसरा लिखकर (लिखित रूप में)। उद्देश्य परक लेखन के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित होते हैं –

१. **उद्देश्य परक लेखन का ज्ञान**
२. **लिख कर अभिव्यक्त कर सकने की क्षमता**
३. **रचना कार्य में मौलिकता लाना**

उपर्युक्त तीनों उद्देश्यों की पूर्ति उद्देश्यपरक लेखन के अंतर्गत की जानी चाहिए। यदि आप इन उद्देश्यों को भली-भांति देखेंगे तो यह पता चलता है कि पहले उद्देश्य में हमारा ध्येय रचना कार्य के विभिन्न रूपों की जानकारी कराना होगा। यह ध्यातव्य है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर इनकी जानकारी स्तारानुकूल ही संभव हो सकेगी।

द्वितीय उद्देश्य के अंतर्गत हमने लिख कर अभिव्यक्त करने की योग्यता प्रात करने की योग्यता को स्थान दिया है। इसमें पत्र, प्रार्थना पत्र, वर्णन, विवरण निबंध, कहानी या अति लघुसंवाद दिए गए हैं। इनकी भी अपनी- अपनी सीमाएं हैं। हमारी परीक्षा प्रणाली मूलतः लिख कर अभिव्यक्त कर सकने की क्षमता पर निर्भर है। जिसकी लेखन शैली जितनी अच्छी है वो अपने आप को उतना ही योग्य सिद्ध कर पाता है। उपन्यास, कहानियाँ, संस्मरण, डायरी, लेख, निबंध आदि विभिन्न तरह के उद्देश्यपरक लेखन लिख कर अभिव्यक्त कर पाने की क्षमता पर ही निर्भर हैं।

मौलिकता लाने के सम्बन्ध तीसरा उद्देश्य, उद्देश्यपरक लेखन के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इससे पूर्व हम निबंधादी के अंतर्गत प्रायः रटी – रटाई बातें ही देखा या जांचा करते थे, परन्तु आज के युग में यह आवश्यक हो गया है कि छात्र इस विषय में मौलिकता का परिचय दे। जब हम मौलिकता की बात करते हैं तो इसका अर्थ आप को यह नहीं लेना चाहिए कि इस स्तर पर छात्र को एक लेखक ही बना दें। यंहां

इसका अभिप्राय उसमें मौलिकता की उद्भावना करना होगा । जो कुछ वह लिखे उसमें उसके अपने अनुभव की बात उसके अपने ढंग से आनी चाहिए। उसकी भाषा अपनी हो उसके भाव अपने हों। इस विषय में एक बात महत्वपूर्ण और भी है जिसका वर्णन करना यंहां उचित होगा । मौलिकता का अर्थ असंबद्ध, अप्रासंगिक या क्रमरहित लेखन से कदापि नहीं है। इसका अर्थ विचारों, अनुभवों या शैली की मौलिकता है, किन्तु विषयांतर कदापि नहीं। इतना होते हुए भी आप बहली- भांति जानते है कि प्रारम्भ में विद्यार्थी अप्रासंगिक, क्रमहीन बातें तो लिखेगा ही, अतः इस परिस्थिति में प्रयाप्त धैर्य, स्नेह व सहानुभूतिपूर्वक सहयोग की वृत्ति ही अपनानी होगी।

बच्चों के संप्रत्यय को समझने के लिए उनके लेखन का विश्लेषण करना (Process of analyzing children's writing to understand their conceptions): सामन्यतया बच्चों के लेखन शैली को विकसित करने के लिए कुछ निर्धारित विषयों पर ही लिखने के लिए दिया जाता था किन्तु अब स्वतंत्र लेखन को प्रधानता दी जाती है। जब बच्चा स्वयं से कुछ लिखने के लिए चुनता है तो वह उस विषय के साथ न्याय कर पाने में सफल हो पाता है। बच्चे के लेखन से बच्चों के संप्रत्यय के बारे में भी आसानी के साथ पता लगाया जा सकता है । लेखन उनके सम्प्रत्यय निर्माण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।बच्चे अपने आस -पास बहुत सी बातें देखते हैं और उन्हीं के आधार पर वे उन विशेष चीज़ों के बारे धारणा का निर्माण करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

8. उद्देश्यपरक लेखन से आप क्या समझते हैं ?
9. उद्देश्यपरक लेखन के उद्देश्यों को स्पष्ट करें।
10. रचना कार्य में मौलिकता लाना से आप क्या समझते हैं ?
11. लिख कर अभिव्यक्त करने योग्यता से आप क्या समझते हैं ?

4.8 सारांश

हमारे देश में आकादमिक उपलब्धि की सफलता मूलतः लिखने की योग्यता पर ही निर्भर है चूँकि जो बेहतर तरीके से लिख सकता है वही अपने आप को ठीक ढंग से परीक्षा में प्रस्तुत कर सकता है। लिखना एक तरीके से बात करने के सामान है । जैसे ही हम लिखते हैं हम किसी से बात करते हैं हांलाकि अधिकतर जिससे से हम बात कर रहे होते है वह हमारे सामने उपस्थित नहीं होता है । हम वर्तमान की परिस्थितयों या घटनाओं की याद ताज़ा रखने के लिए भी लिखते हैं । एक अध्यापक को लिखने की शिक्षा ठीक उसी प्रकार देनी चाहिए जैसे की वह बात करने की शिक्षा पा रहा हो कहने का तात्पर्य है कि लिखना सिखाने की प्रक्रिया बिल्कुल स्वाभाविक होनी चाहिए । चूँकि जब तक बच्चा स्कूल आता है

तब तक वह नए नए वाक्य बनाना सीख चुका होता है हालांकि अभी वह उन वाक्यों का क्रमबद्ध प्रयोग करने में माहिर नहीं होता है ।भाषा सीखने का एक स्वाभाविक क्रम है – सुनना, बोलना और लिखना । भाषा की शिक्षा देने के लिए प्राथमिक स्तर से ही बच्चों में इन चारों कौशलों को विकसित करने का प्रयास किया जाता है। बच्चों को पहले मौखिक भाषा के शिक्षा दी जाती है, उसके पश्चात पढ़ना सीखाया जाता है और उसके तुरंत पश्चात लेखन- कौशल का शिक्षण आरम्भ किया जाता है। जैसे ही बच्चे अक्षरों का उच्चारण कर उनके लिपिबद्ध रूप को पहचानने लगते हैं, वैसे ही इन अक्षरों के लिपिबद्ध रूपों को लिखना सीखना भी शुरू कर दिया जाता है । यह कार्य तभी शुरू किया जाना चाहिए जब बच्चों की उंगलियां कलम पकड़ने की अभ्यस्त हो जाएं।

4.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. अग्रवाल, पी. और संजय वुफमार 2000 (संपादक), हिंदी देशकाल में
2. चॉम्स्की, एन. 1957, सिनटेक्टिक स्ट्रक्चर्स, दी हेग: मौटेन कं.।
3. चॉम्स्की, एन. 1959, रिव्यू ऑफ स्किनर्स वर्बल बिहेवियर. लैंग्वेजेस 35.1.26-58
4. चॉम्स्की, एन. 1972, लैंग्वेज एंड माइंड, न्यूयार्क: हारकोर्ट ब्रास जोवानोविच।
5. चॉम्स्की, एन. 1996, पॉवर्स एंड प्रोस्पेक्ट्स: रिफलेक्शंस ऑन ह्यूमन नेचर एंड द सोशल आर्डर, दिल्ली: माध्यम बुक्स।
6. चॉम्स्की, एन. 1965, आस्पेक्ट्स ऑप़्फ द थ्योरी ऑफ सिनटेक्स, कैंब्रिज : एम. आई. टी. प्रेस।
7. चॉम्स्की, एन. 1986, नॉलेज ऑफ लैंग्वेज, न्यूयार्क : प्रागर।
8. चॉम्स्की, एन. 1988, लैंग्वेज एंड प्रॉब्लम्स ऑप़्फ नॉलेज, वैंफब्रिज, मास: एम. आई. टी.।
9. दुआ, एच. आर. 1985, लैंग्वेज प्लानिंग इन इंडिया, दिल्ली: हरनाम पब्लिशर्स।
10. हैबरमास, जे. 1998, ऑन द प्रागमैटिक्स ऑफ कम्युनिवेफशन, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
11. हैबरमास, जे. 1998, दी फिलॉस्फिकल डिसकोर्स ऑप़्फ मॉडर्निटी, कैंब्रिज, मास: एम. आई. टी. प्रेस।
12. कुमार, के. 2001, स्कूल की हिंदी, पटना: राजकमल।
13. शिक्षा मंत्रालय, शिक्षा आयोग कोठारी कमीशन 1964 -1966, शिक्षा एवं राष्ट्रीय विकास, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966
14. नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन, 1986, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, शिक्षा विभाग, नयी दिल्ली।
15. पटनायक, डी. पी. 1981, मल्टीलिंगुएलिज्म एंड मदर-टंग एजुवेफशन, ऑक्सपफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

16. पटनायक, डी. पी. 1986, स्टडी ऑफ लैंग्वेजेज, ए रिपोर्ट, नयी दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी।
17. रिचड्र्स, जे. सी. 1990, दी लैंग्वेज टीचिंग मैट्रिक्स, कैब्रिज :कैब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
18. सायर, डी. 1924, दी इपैफक्ट ऑप़फ बाइलिंगुलिज्मम ऑन इंटेलिजेंस, ब्रिटिश जर्नल ऑप़फ साइकोलॉजी 14:25-38
19. श्रीधर, के.के. 1989, इंग्लिश इन इंडियन बाइलिंगुलिज्म,नयी दिल्ली, मनोहर।
20. तिवारी, बी. एन., चतुर्वेदी, एम. और सिंह, बी. 1972 (संपादकगणद्), भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका, दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
21. यूनेस्को, 2003, एजुवेफशन इन ए मल्टीलिंगुएल वर्ल्ड, यूनेस्को एजुकेशन पोजिशन पेपर, पेरिस।
22. व्योगोत्सकी, एल. एस. 1978, माइंड इन सोसायटी: दी डेवलपमेंट ऑप़फ हायर साइकोलॉजिकल प्रोसेस, वैंफब्रिज, मॉस: हार्वड यूनिवर्सिटी प्रेस।
23. जमील, वी. 1985, रेस्पोंडिंग टू स्टूडेंट राइटिंग, टी. ई. एस. ओ. एल. त्रौमासिक, 19.1
24. इस वेबसाइट को जरूर देखें : http//www.languageindia.com

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. लिपि की शिक्षण की आवश्यकता एवं लेखन कौशल के महत्व पर प्रकाश डालें।
2. उद्देश्य परक लेखन से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।
3. लेखन कौशल या लिखित अभिव्यक्ति के महत्व को स्पष्ट करें।
4. पढ़ने एवं लिखने के मध्य के अंतर्संबंध को स्पष्ट करें।
5. विशेष सन्दर्भों में लेखन जैसे सामाजिक विज्ञान, विज्ञान, गणित एवं विविध साहित्यों की भाषा में लिखने की प्रक्रिया से आपका क्या अभिप्राय है ?